अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

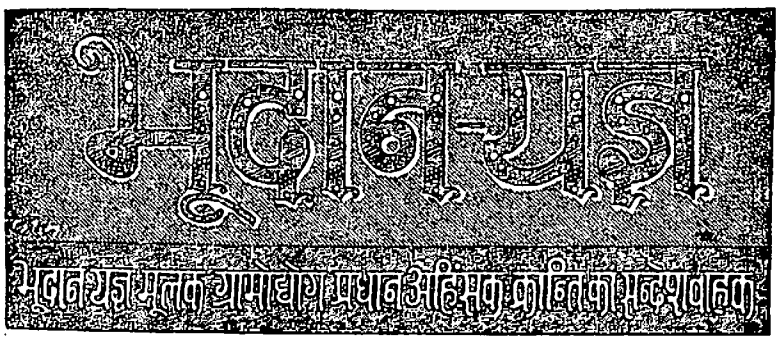

सौर श्रावण ११, शक १८७९ सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार
वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति २ आना

ग्राम-सेवा-मंडल, वर्धा का कायापलट !

वर्धा तहसील में बरसों से सतत अविरोधी जन-सेवा करने वाली ग्राम-सेवा-मंडल नाम की संस्था, जिसने आज़ादी के संग्रामों में अपना पूरा हविर्भाग बराबर दिया है, जो आज रचनात्मक कामों का एक प्रमुख केन्द्र है, जो विनोबाजी के सीधे मार्ग-दर्शन में चलती है और उनके अनेक साथी और शिष्य जिसके आधार-स्तंभ हैं, उस संस्था के संबंध में कोलीकोड़ (केरल) की सभा में विनोबाजी ने निर्णयात्मक रूप से कहा :

"भूदान और ग्रामदान के विशिष्ट कार्यकर्ताओं का संस्था में समावेश किया जाय और सब मिल कर जैसा चाहें, संस्था को रूप दें। अर्थात् संस्था क्रांति का केंद्र बने।

"श्री बंग और उनके साथियों से कहा जाय कि यह कुल संस्था ही भूदान-कार्य के लिए समर्पित है।"

वर्ष-३, अंक-४४ ॥ राजघाट, काशी ॥ शुक्रवार, २ अगस्त, '५७

चक्रव्यूह के अभिमन्यु का आवाहन !

(विनोबा)

…हम आपसे सिर्फ मदद की याचना करते हैं। आप सबका एक साथी इस काम में निकल पड़ा है। व्यूह में चल पड़ा है और आपकी मदद चाहता है। महाभारत की कथा है : सौभद्र ने चक्रव्यूह में प्रवेश किया था। बाकी लोग उसकी मदद करें, तो ठीक, अन्यथा वह तो जा ही रहा था। इसी तरह इस शख्स ने चक्रव्यूह में प्रवेश किया है और आप सबकी मदद चाहता है। अगर आप चाहते हैं, तो उसे मदद कीजिये और इस काम से उसे मुक्त कीजिये ! अन्यथा बाबा और उसके चंद साथी अपना नसीब देख लेंगे।…

◆ ◆ ◆

यहाँ सब पक्षों के लोग आये हैं। हमें बहुत ज्यादा नहीं कहना है। हिंदुस्तान बड़ा मुल्क है। उसकी समस्याएँ भी बड़ी हैं। समस्याओं का हल सोचने का ढंग भी अलग-अलग हो सकता है। अतः ऐसे बड़े देश में पोलिटिकल आइडियालॉजीज (राजनीतिक तत्त्वज्ञान) अलग-अलग हों, तो कोई आश्चर्य नहीं है। लेकिन कुछ बुनियादी सवाल ऐसे होते हैं, जिन्हें हल किये बिना कोई आइडियालॉजी आगे बढ़ नहीं सकती। जनता भूखी है, तो भूख का निवारण करना इसी तरह का बुनियादी काम है। किसी तरह का मतभेद इसमें नहीं है। 'फ्लू' के निवारण के लिए अभी सबने मिल कर प्रयत्न किया है। गाँव को आग लगी हो, तो सब पक्षों के और सब धर्मों के लोग मतभेद भुला कर दौड़ कर आते ही हैं। भूमिहीनों का मसला भी इसी प्रकार का है। उसका हल कई प्रकार से हो सकता है। लोकमत के आधार पर कानून बना कर भी कुछ काम हो सकता है। भिन्न-भिन्न राज्य ऐसा प्रयत्न कर भी रहे हैं। छह साल से भूदान-आंदोलन ने भी यह सवाल देश के सामने रखा और इस देश की सभ्यता के अनुसार उसके हल का एक तरीका अपनाया, जो करुणा का तरीका है। गांधीजी की ही वह सीख है। इस तरीके से कुछ काम हो सकता है, इसका नमूना भी सामने आया और **ग्रामदान का विचार उसमें से प्रकट हुआ, जिससे किसी भी आइडियालॉजी का मतभेद नहीं हो सकता।** जमीन की निजी मालकियत का विसर्जन ग्राम-समुदाय के बीच प्रेम से हमें करना है। अगर यह मालकियत जबरदस्ती से छुड़ाते हैं, तो मतभेद, नैतिक सवाल, व्यावहारिकता, झगड़े आदि अनेक चीजें खड़ी होंगी, लेकिन प्रेम के मार्ग में ये सब चीजें नहीं आ सकतीं।

ग्रामदान से जो काम हो सकता है, वह आज किसी भी कानून से नहीं हो सकता। कम्युनिस्ट-सरकार के मंत्री ने भी कालड़ी में यही कहा था। कम्युनिस्ट या दूसरे पक्ष जमीन की निजी मालकियत मिटाने की बात या तो करना नहीं चाहते या वैसा करने की हिंमत नहीं करना चाहते। इसमें उनका दोष भी नहीं है, क्योंकि उन्हें परिस्थिति देखनी पड़ती है। दो साल पहले आंध्र-कम्युनिस्ट पार्टी के 'चुनाव-मैनीफेस्टो' में 'बीस एकड़ तरी जमीन के सीलिंग' की बात कही गयी थी। पर गोदावरी और कृष्णा के किनारे की बीस एकड़ जमीन तो बहुत अधिक हो जाती है। उस सीलिंग से भूमि-हीनों को अधिक लाभ नहीं होता। लेकिन वे लोग इससे ज्यादा बोल भी नहीं सकते। इसलिए कानून से मालकियत मिटाने की बात मृगजलवत् है। लेकिन एक छोटे-से प्रयत्न के कारण २५०० गाँवों में यह मालकियत मिटी। **अगर सिर्फ २५ गाँवों में भी सशस्त्र बलवे से यह काम हुआ होता, तो दुनिया में उसकी चर्चा होती। पर शांति से यहाँ यह काम हुआ, यही उसका गुनाह है ! लेकिन चर्चा भले न हो, उसका महत्त्व कम नहीं होता।** आज सब तरफ मालकियत का वातावरण है। कानून भी उसका समर्थक है। कोई पार्टी वह मिटा नहीं पा रही है। ऐसी हालत में इतना काम हुआ है! यह छोटा-सा बिंदु है, जो अमृत-बिंदु है। इसे मानस-शास्त्र की दृष्टि से नहीं, आध्यात्मिक दृष्टि से देखें। आर्थिक और सामाजिक क्रांतियों का भी मूल आध्यात्मिक विचार में होता है। पहले 'स्पिरिच्युअल वैल्यू' बदलनी होती है, तब दूसरे 'वैल्यूज़' (मूल्य) बदलते हैं।

मैं केरल का नहीं हूँ, न यहाँ की भाषा में लोगों को समझा सकता हूँ। फिर भी यहाँ के चंद बालगोपाल जोरदार बारिश में निकल पड़े हैं, ताकि यह मसला हल हो। दो बार की बीमारी में भी यात्रा चली। हम इतना ही पूछते हैं कि **अगर गाँव को आग लगे और कुछ लोग उसे बुझा रहे हैं, तो आपस के मतभेद छोड़ कर आप उनकी मदद में आयेंगे या बैठे ही रहेंगे ? तो आग बुझाने का ही यह काम चल रहा है।** जो यश-अपयश इसमें मिलेगा, वह आप सिर्फ दूर से देखेंगे या उसमें हिस्सा भी बटायेंगे ? सवाल विनोबा के यश-अपयश का नहीं है। यह आपका यश-अपयश है। हमें भले ही अपयश मिले, इतिहास में यही लिखा जायगा कि एक शख्स अपने चन्द साथियों के साथ जोरदार बारिश में घूम रहा था, फिर भी उसे योग नहीं दिया गया, इसलिए आंदोलन अयशस्वी हुआ। पर यश-अपयश के साथ बाबा का ताल्लुक नहीं रहेगा। **वह एक सेवक मात्र है और सेवक ही रहेगा। सेवक की हैसियत से भिन्न दूसरी कोई हैसियत न उसे हासिल हुई है, न होगी।** बाबा का प्रयत्न ईश्वर के आशीर्वाद से यशस्वी हो, तो भी उसकी हालत फकीर की ही रहेगी; उसमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। उसकी अपनी अलग ही दौलत है और उस दौलत से यश-अपयश का कोई संबंध नहीं है। वह दौलत है—आत्मसंतोष। निरंतर वह उसीका अनुभव करता है।

भाइयो, इतिहास प्रतीक्षा कर रहा है। काँग्रेस बरसों से जनसेवा करने वाली जमात है और हम सबके महान् नेता पं० नेहरू ने भी ग्रामदान का समर्थन किया है। उससे अधिक बड़ा आदेश और किस बड़े मनुष्य से मिल सकता है ? कम्युनिस्ट भी चाहते हैं कि भूमि की निजी मालकित मिटे। समाजवाद के बड़े नेता श्री जयप्रकाशजी भी इसमें निरंतर लगे ही हुए हैं। भारतीय संस्कृति के नेता भी कहते नहीं थकते कि यह काम भारतीय संस्कृति का ही है। **ऐसी हालत में इतिहास लिखेगा कि ये सब लोग इतनी सहानुभूति रखते हुए भी दूर से तमाशा देखते रहे ! इससे ज्यादा हमें कुछ नहीं कहना है।**

इस काम में एक सबसे बड़ी कठिनाई है, जो हर पक्ष को तकलीफ देती है। वह है, अपनी ओर से इसमें 'हविर्दान' देना पड़ता है, त्याग करना पड़ता है ! उसके बिना लोगों के पास हम जा नहीं सकते ! लेकिन इसकी जिम्मेवारी हम पर नहीं, बापू पर है ! उनके पहले यहाँ ऐसा चल जाता था कि भले ही हम आचरण न करें और सिर्फ बड़े-बड़े व्याख्यान ही दे दें ! लेकिन उन्होंने सारा मामला ही बदल दिया ! तो, आज कितना ही बड़ा आदमी यदि कहे कि 'दान दो', तो लोग पूछेंगे :

www.vinoba.in

'आपने क्या दिया ?' गांधी-विचार में सबसे बड़ी मुश्किल यही तो है कि पहले अपने को खुद को करना पड़ता है ! जैसा आचरण, वैसा उपदेश होता है ! पर कम्युनिस्टों के लिए तो यह सबसे आसान चीज है, क्योंकि वे व्यक्तिगत त्याग करते ही रहते हैं। लेकिन वे उसकी जिम्मेवारी नहीं मानते। वे कहते हैं, 'व्यक्तिगत दान पर हमारा विश्वास नहीं है, स्टेट्-लेवल (राज्य के स्तर) पर ही काम हो। जब सरकारी तौर पर कुल जमीन का वँटवारा होगा, तो हमारी जमीन का भी होगा। सामाजिक तौर पर कृति हो, व्यक्तिगत क्यों ?' फिर भी, बिना त्याग किये, वे लोगों के पास जा नहीं सकते ! वह उनका आरंभ ही होगा। 'व्यक्तिगत त्याग से कोई संत बन सकता है, उससे मसला हल नहीं हो सकता,' ऐसा वे कह सकते हैं। परंतु वे स्वयं तो बहुत त्याग करते हैं और गरीबों के समान जीवन भी बिताते हैं, यद्यपि उनके तत्त्वज्ञान में इसके लिए सहूलियत नहीं है !

भाइयो, पुरुषार्थ के काम में कुछ-न-कुछ त्याग करना पड़ता है। लेकिन 'संन्यास लेकर बाहर चले जाइये', ऐसा तो हम नहीं कहते ? आपके पास जो है, वह समाज को अर्पण करो और कुटुंब को, परिवार को बड़ा बनाओ, इतना ही हम कहते हैं। यह कठिन या बड़ा त्याग नहीं है। बल्कि, ग्रामदान में तो तनिक भी त्याग नहीं है ! जो है, भोग ही भोग है ! इससे गाँव की फसल बढ़ेगी, प्रेम बढ़ेगा, हर शख्स सुखी होगा, अपने त्याग से ज्यादा पायेगा ! सिर्फ आरंभ में कुछ त्याग करना पड़ेगा। सो, किसान भी, घर में सब भूखे पड़े हों तो भी, उत्तम बीज संभाल कर रखता है। उसका भी वह कम त्याग नहीं है। पर उतना प्रारंभिक त्याग वह करता है और फिर बीज खेत को समर्पण करके फसल पाता है। आपसे भी इतनी ही अपेक्षा है कि आप आरंभ में कुछ त्याग करके इस काम को उठा लें।

हम आपसे सिर्फ मदद की याचना करते हैं। आप सबका एक साथी इस काम में निकल पड़ा है। व्यूह में वह चल पड़ा है और आपकी मदद चाहता है। महाभारत की कथा है : सौभद्र ने चक्रव्यूह में प्रवेश किया था। बाकी लोग उसकी मदद करें,तो ठीक, अन्यथा वह तो जा ही रहा था ! इसी तरह इस शख्स ने चक्रव्यूह में प्रवेश किया है और आप सबकी मदद चाहता है ! अगर आप चाहते हैं, तो उसे मदद कीजिये और इस काम से उसे मुक्त कीजिये, अन्यथा बाबा और उसके चंद साथी अपना नसीब देख लेंगे !

(केरल प्रादेशिक सर्वपक्षीय सभा में दिये गये भाषण का सार; कोलीकोड़, ११-७)

अहिंसा कैसी ?

मैंने भारत के सामने आत्म-बलिदान का पुरातन कानून रखने का साहस किया है, क्योंकि सत्याग्रह और उसकी प्रशाखाएँ–असहयोग और सविनय प्रतिकार–आत्मपीड़न के नये नाम के सिवाय और कुछ नहीं हैं। वे ऋषि, जिन्होंने हिंसा के बीच में अहिंसा के कानून को खोजा, न्यूटन की अपेक्षा कहीं अधिक प्रतिभाशाली थे। वे स्वयं वेलिंग्टन की अपेक्षा कहीं अधिक महान् योद्धा थे। अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग वे जानते थे, इसलिए समझ गये कि उनका कोई उपयोग नहीं है; और इसलिए थके-हारे विश्व को उन्होंने सिखाया कि उसकी मुक्ति हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसा से होगी। अहिंसा का अर्थ सक्रिय स्थिति में भान-सहित (जान-बूझ कर) पीड़न है। इसका अर्थ अत्याचारी की इच्छा के सामने चुपचाप झुक जाना नहीं है, वरन् इसका अर्थ है, अत्याचारी की इच्छा के विरुद्ध अपनी सारी प्राण-शक्ति लगा देना। हमारे अस्तित्व के इस कानून के अन्तर्गत काम करते हुए अकेले व्यक्ति के लिए भी संभव है कि वह अपने सम्मान, अपने धर्म और अपनी आत्मा की रक्षा करने के लिए एक अन्यायी साम्राज्य की महान् शक्ति के विरुद्ध खड़ा हो जाय और इस प्रकार उस साम्राज्य के पतन या सुधार की नींव डाल दे। इस प्रकार, मैं भारत से अहिंसा बरतने का आग्रह इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि वह कमजोर है, बल्कि इसलिए कि मैं उसकी शक्ति और सामर्थ्य को समझता हूँ। अपनी शक्ति को समझने के लिए उसे शस्त्रों की तालीम की आवश्यकता नहीं है। हमें उसकी आवश्यकता इसलिए भास होती है, क्योंकि हम यह सोचते रहे हैं कि हम सिर्फ मांस के लोंदे हैं। मैं चाहता हूँ कि भारत यह समझे कि उसमें एक आत्मा है, जो कभी नष्ट नहीं हो सकती, जो हर भौतिक कमजोरी को जीत कर ऊपर उठ सकती है और सारे संसार की भौतिक गुटबंदी को चुनौती दे सकती है।

('यंग इंडिया', १८ अगस्त १९२०) **—गांधीजी**

प्रश्नोत्तरी

प्रश्न : आज जमीन का जो बुनियादी मसला है, उसमें परस्पर-हितों का झगड़ा ही दीखता है। एक तरफ हैं, जमीन के मालिक और दूसरी तरफ हैं, टेनन्टस् और किसान-मजदूर। अब भूदान चाहता है कि व्यक्तिगत मालकियत समाज को अर्पण हो। समाज की मालकियत होने पर भी इतिहास में ऐसा ही हुआ है कि किसी एक 'डॉमिनन्ट मायनॉरिट' की सत्ता समाज पर चली है और वह अपनी इच्छा-शक्ति 'मेजॉरिटी' पर लादती है। उस हालत में अगर भूदान से समाज की मालकियत बनी, तो भी झगड़ा कायम रहेगा। दूसरी बात यह है कि पंचवार्षिक योजना के अनुसार देश इंडस्ट्रीयलाइज्ड होगा, तो जमीन के क्षेत्र में जो परस्पर-हितों के झगड़े हैं, वे औद्योगिक क्षेत्र में, फैक्टरियों के बारे में भी चलेंगे। इस पर आपका क्या सुझाव है ?

विनोबा : कुल मिला कर मायनॉरिटी–मेजॉरिटी का झगड़ा होता है, तो उसका हल क्या, यह पूछा है। इसका उत्तर सर्वोदय में ही है। दूसरे विचारों में इसका उत्तर नहीं है। मायनॉरिटी-मेजॉरिटी के जो सवाल खड़े हुए हैं, वे आपके चुनाव ने और भी मजबूत किये हैं। इसलिए सर्वोदय कहता है कि सत्ता विकेंद्रित होनी चाहिए। गाँव की सत्ता गाँव के हाथ में होगी। केवल संयोजन सेंटर करेगा और परदेश से संबंध आदि सर्वसाधारण बातें उसको करनी होगी। हरेक गाँव में ग्रामसभा होगी। जमीन की मालकियत गाँव की। ग्रामसभा को गाँव का पूरा अधिकार। ग्रामसभा में घर-घर से एक व्यक्ति रहेगा। पंचायत भी होगी, परंतु वह आज जैसी मेजॉरिटी वाली नहीं ! ग्रामसभा सर्वानुमति से चुनेगी। पंचायत सेवक होगी, मालिक ग्रामसभा। दोनों सर्वानुमति से काम करेंगे। सर्वानुमति से प्रस्ताव पास होगा। इस योजना में डॉमिनन्ट मायनॉरिटी या मेजॉरिटी नहीं रहेगी। गाँव में प्रेम और सहयोग का वातावरण रहेगा। अभी तक जो लोकशाही चली, वह इस तरह नहीं चली। आज की लोकशाही प्रतिक्रिया-रूप है। राज्यसत्ता और कैपिटॅलिज्म के विरोध में से समाजवाद और कम्युनिज्म पैदा हुए हैं। इसलिए दोनों स्वयं जीवन-सिद्धांत नहीं हैं। सर्वोदय जीवित सिद्धांत है, इसलिए उसकी बुनियाद स्वतंत्र है। सब मिल कर कोई बात तय करते हैं, तो उसमें प्रेम होता है। जो सेवा करेगा, उसकी ज्यादा प्रतिष्ठा होगी। शारीरिक बल से या संपत्ति से कोई डॉमिनन्ट नहीं माना जायगा। परिवार में जो न्याय होता है, वही समाज को लागू करना, यही सर्वोदय है। परिवार एकरस होता है, सबका अधिकार समान होता है। एक-दूसरे के लिए त्याग करते हैं। पर आज हम घर में एक ढंग से बरतते हैं और समाज में दूसरे ढंग से। परिवार में तो सुख ही है न! फिर तो समाज में सुख और भी बढ़ेगा ! आज परिवार के अंदर तो प्रेम है, परंतु समाज में स्पर्धा चलती है। स्पर्धा के आधार पर ही आज समाज खड़ा है। सब जानते हैं कि घर सहयोग पर खड़ा है, इस वास्ते वहाँ सुख है। उसी तरह समाज को सहयोग पर खड़े करने की बात है।

तो नैशनलाईजेशन का विचार और सर्वोदय में फरक है। सर्वोदय याने विकेंद्रीकरण। वहाँ सबकी राय से काम होगा। इस वास्ते डॉमिनन्ट मेजॉरिटी की सत्ता का भय नहीं रहेगा। परस्पर-सहयोग से काम चलेंगे। इस वास्ते स्पर्धा समाज में नहीं रहेगी। तो, सर्वोदय में ये तीन विचार आते हैं : (१) एकमत से निर्णय, (२) सहयोगी समाज और (३) विकेंद्रीकरण। इसलिए सर्वोदय में जो समाज-रचना होगी, वह मजबूत होगी, वे दूसरों पर आक्रमण नहीं करेंगे। दूसरे भी उन पर आक्रमण करना नहीं चाहेंगे। वह निर्भय समाज होगा। वह समाज दूसरों को प्रेम की प्रेरणा देगा। नैतिक शक्ति उससे पैदा होगी, तो नैतिक शक्ति से हिंसक शक्ति लज्जित होगी। आज दुनिया में हिंसक शक्ति काम कर रही है। वह लज्जित होने की तैयारी में है, परंतु सामने नैतिक शक्ति खड़ी नहीं है, इस वास्ते लज्जित नहीं हुई। आज भयानक शस्त्र परस्पर-विरोधी पंक्षों के पास हैं, इसलिए समस्या हल नहीं होती। तो, हिंसक शक्ति बलहीन बन रही है, फिर भी वह शक्तिहीन नहीं हो रही है, क्योंकि सामने नैतिक शक्ति खड़ी नहीं हो रही है तो नैतिक शक्ति अपनी सामाजिक रचना के साथ जब खड़ी होगी, तब हिंसक शक्ति लज्जित होगी। भूदान-ग्रामदान से वह शक्ति प्रगट हो रही है।

(पोन्नानी, पालघाट, २२-६)

www.vinoba.in

समाजवाद ग्रामदान के द्वारा ही संभव है!

(जयप्रकाश नारायण)

ग्रामदान का महत्त्व समाजवाद की दृष्टि से कितना अधिक है, यह मैं आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ। इसलिए नहीं कि समाजवादी आंदोलन के साथ मेरा परिचय रहा है, बल्कि इसलिए कि देश में आज समाजवाद की ही चर्चा है! जवाहरलालजी, कांग्रेस, पी. एस. पी., कम्युनिस्ट पार्टी आदि सब समाजवाद की बात करते हैं। जनसंघ वाले भी घुमा-फिरा कर वही बात कहते हैं। हिंदु सभा वाले भी 'हिंदु समाजवाद' चाहते हैं! पता नहीं 'हिंदु समाजवाद' क्या है? अगर वह कोई हो, तो वह भी ग्रामदान से ही सधेगा, क्योंकि ग्रामदान इसी देश की संस्कृति से निकली हुई चीज है और गांधी-विनोबा भी यहीं की उपज हैं! खैर! तो, इन मुख्य पार्टियों ने तो समाजवाद का ही ऐलान किया है। भारत कृषि-प्रधान देश है। बड़े उद्योग यहाँ कम हैं और उनमें काम करने वाले मजदूरों की संख्या भी यहाँ की जनसंख्या के मुकाबले नगण्य है। इसलिए अमरीका, इंग्लैंड आदि के समाजवाद से यहाँ का समाजवाद स्वभावतः भिन्न होगा। वहाँ पर सौ में आठ-दस-बीस लोग खेती करते हैं और यहाँ अस्सी प्रतिशत! यहाँ का समाजवाद वास्तव में कृषक-समाजवाद ही बनेगा। ग्रामदान में भी गाँव का ही भूमि-स्वामित्व माना जाता है। इसका अर्थ है, समाज की ही वह संपत्ति है, जो लोगों के उपयोग के लिए सबको प्राप्त होगी। समाजवाद का भी यही मूल विचार है कि भूमि भी एक संपत्ति है और वह समाज की ही है। ऐसा हम सब जब मानते हैं, तब जितने भी समाजवादी हैं, वे इस आंदोलन का समर्थन क्यों न करें? अगर देश के सारे व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण होता है, लेकिन कृषि-समस्या वैसी की वैसी रहती है, तो वह समाजवाद हरगिज नहीं हो सकता। जब हम भूदान का आंदोलन शुरू में करते थे, तो लोग पूछते थे कि छठा, दसवाँ-बीसवाँ हिस्सा लेने से क्या होने वाला है? लेकिन ग्रामदान ने उनकी शंकाओं का निराकरण कर दिया। अब हम उनसे पूछ सकते हैं कि 'सीलिंग' से क्या होगा और बँटाईदारी के कानून से क्या बनेगा? निश्चय ही वह समाजवाद नहीं होगा; और चाहे जो हो! उसके लिए ग्रामदान ही जरूरी है। यह कानून से भी नहीं हो सकता, क्योंकि जमीन के मालिक लोग ही आज 'मेजॉरिटी' में हैं। जब उनमें विचार-परिवर्तन होगा कि भूमि का स्वामित्व-विसर्जन करना ही है, तभी ग्रामदान कानून से हो सकेगा! याने ग्रामीकरण का कानून तभी बनेगा, जब लोकमत तैयार कर लिया जायेगा। तब तक भूमि का निजी स्वामित्व कानून से कोई भी समाजवादी सरकार दूर नहीं कर सकती। यदि बहु संख्या मजदूरों और बटाईदारों की ही होती और जमीन के छोटे-बड़े मालिक भी बहुत कम होते, तब शायद सफल पुनर्वितरण का कानून बनता, फिर भी मालकियत ही मिटा देने का नहीं!

कम्युनिस्ट मंत्रि-मंडल के एक सदस्य श्री कृष्ण अय्यर ने भी सर्वोदय-संमेलन में कहा था कि भूमि-समस्या का पूरा हल कानून से नहीं हो सकता! दरअसल कानून बनने पर भी प्रतिक्रिया-स्वरूप दसों समस्याएँ पैदा होती हैं। फिर, राजनीतिक पार्टियों को बराबर यह खयाल रखना पड़ता है कि किन लोगों के पास शक्ति है और किन लोगों के पास वोट! इस प्रकार वे कुछ कर नहीं पाते। केरल में दोनों पक्षों की सरकारें बनीं और अब कम्युनिस्ट-सरकार है। लेकिन कोई भी १५-२० एकड़ से कम का 'सीलिंग' करने की बात नहीं करता या सीलिंग के आगे बढ़ ही नहीं पाता। जोतने वाले की जमीन हो और वह दूसरे के हाथ में कतई न रहे, इतना भी यदि उनसे हो जाय, तो काफी है! लेकिन 'पर्सनल कल्टिवेशन' (जोतने वाले की जमीन) के कानून में से भी घूमा-फिरा कर शोषकों को वापस कैसे उसी जगह लाकर बिठा दिया जाता है, यह हम जानते हैं! इसलिए एक ओर मामूली किसान, तो दूसरी ओर महाराजाधिराज दरभंगा भी आज 'पर्सनल कल्टिवेटर' हैं! मतलब यह कि गुत्थी को कोई काट ही नहीं पा रहा है। बंबई का कानून कुछ आगे बढ़ा, फिर भी समस्या का हल वह नहीं निकाल सका। परंतु इधर ग्रामदान में हम देख रहे हैं कि भूमि-संबंधी निजी स्वामित्व-भावना कैसे संपूर्णतया समाप्त हो रही है! और ग्रामदान तथा ग्रामराज तो कानून के सपने में भी आज नहीं आ सकते!

अभी तो लोग यह भी समझ नहीं पाये हैं कि वास्तव में जमीन है किसकी! वे कह देते हैं, वह राज्य की है। पर यह बिलकुल गलत बात है। जमीन तो जनता की है और राज्य व जनता में बहुत अंतर है। लोग मालिक हैं, लोग ही जमीन की व्यवस्था करें। सरकार लगान भी क्यों लेती है? वह आमदनी पर कुछ टैक्सी लेती है, सो तो ठीक है, क्योंकि उसको हमारा डाक-तार-रेल का कुछ प्रबंध करना पड़ता है। लेकिन वह लगान क्यों ले, जब कि मालिक वह नहीं, जनता ही है!

तो, कानून के और सरकार के फेर में ही यदि हम रहेंगे कि समस्या उनसे हल होगी, तो यह तय है कि कम-से-कम आज की डेमोक्रेसी में ऐसा कानून सफल नहीं हो सकता। और अगर तानाशाही बरती जाय, तो वह स्वयं अपने-आप में ऐसी समस्या बन जाती है कि जिसका कोई हल ही नहीं है! फिर, तानाशाही में क्या स्थिति है, यह भी हम रूस में देख ही रहे हैं। उन्होंने सारी जमीनें छीन कर राज्य को मालिक बना दिया। करोड़ों मारे गये, कैद में डाले गये, जख्मी हुए और किसानों को जबर्दस्ती सामूहिक खेती में लगाया गया! लेकिन जानकार लोगों ने लिखा है कि अधिकांश लोग आज भी व्यक्तिगत कृषि ही चाहते हैं, हालाँकि आज वह वहाँ चल नहीं सकती, क्योंकि न तो उनके पास हल रहे हैं और न घोड़े! ट्रैक्टर भी स्टेट् के हैं। वे लेकर एक-एक किसान अलग-अलग खेती नहीं कर सकता और न राज्य ही उसको इसके लिए मदद करेगा। ऐसी हालत में भी सामूहिक खेती के लिए उनका मन तैयार नहीं। बाद में स्टालीन ने परिवार के पीछे दो-तीन एकड़ जमीन दी, ताकि वे तरकारी पैदा करें, मुर्गी-सूअर पालें आदि। तो लोगों का उसीमें ज्यादा मन लगता था। फिर सरकार को कड़े नियम बनाने पड़े, जैसे—सामूहिक खेती का औजार कोई अपनी पारिवारिक खेती में नहीं ले जा सकता, आदि। इस तरह दिक्कतें खड़ी करते गये, फिर भी वे मन को नहीं बदल पाये। हृदय-परिवर्तन या मौलिक परिवर्तन की बात तो छोड़ दीजिये, एक मामूली परिवर्तन भी वहाँ डिक्टेटरी-कानून से नहीं हो सका। चीन के बारे में लोगों की कुछ भिन्न राय है। श्री पाटील साहब आदि हमारे जो मित्र वहाँ हो आये हैं, वहाँ की हालत से बहुत प्रसन्न हैं और प्रशंसा करते हैं। अगर उनकी बतायी हुई हालत सही है, तो उसका भी कारण है, रूस और चीन की क्रांतियों का अंतर। रूस की क्रांति अल्पसंख्यकों की थी, चीन की बहुसंख्यकों की। माओत्से तुंग के पीछे अधिकांश किसान-मजदूर हैं, ऐसा हमें लगता है, तभी उनकी योजनाएँ लोग उत्साहपूर्वक चलाते हैं। लाखों कोऑपरेटिव फॉर्म दो साल में वहाँ बन गये! हमने कहा, "डिक्टेटरशिप में सब कुछ हो सकता है", तो पाटील साहब ने कहा कि "मुझे विश्वास है, यह सब स्वेच्छापूर्वक हुआ, दबाव से नहीं हुआ।" तब हमने कहा, "च्यांग काई शेक के साथ बहुत थोड़े लोग थे और इनके साथ ज्यादा, इसलिए यह हो सकता है, ऐसा इसका अर्थ है।" लेकिन फिर भी हमें लगता है कि मेजॉरिटी की डिक्टेटरशिप मायनॉरिटी पर वहाँ है! खैर, जो कुछ भी हो, ग्रामदान के तरीके में तो ऐसी कोई चीज़ ही नहीं है और वह सब तरह से सफल है।

अतः तमाम समाजवादी पार्टियों को यह सर्वोदय की एक मैत्रीपूर्ण चुनौती ही है कि इस कार्यक्रम को वे उठा लें। विनोबाजी ने उन लोगों को मानो बाँध ही लिया है कि या तो ग्रामदान में लगो या समाजवाद की चर्चा छोड़ो!

कोई कह सकता है कि "आप लोग तो त्यागी, तपस्वी हैं। आपकी बात लोग मान सकते हैं। हमसे लोग यह विचार कैसे समझेंगे?" यह कहना ठीक नहीं है। लेकिन थोड़ी देर के लिए यह सही भी मान लें, तो हम पार्टीवालों से यह तो पूछ सकते हैं कि आप अगर लोगों को नहीं समझा सकते, तो आप अपनी जमीन तो छोड़ सकते हैं? सब पार्टी वालों के पास थोड़ी-बहुत जमीनें हैं। जब वे कहते हैं कि समाजवाद चाहिए, तो अपनी जमीनें वे क्यों नहीं छोड़ देते और क्यों नहीं लिख देते कि जब कभी ग्रामदान हो, मेरी जमीन उसमें शामिल मान ली जाय! ऐसा भी अगर हो, तो एक छोटी क्रांति ही हो जाय! नेता करते हैं, तो उनके पीछे लोग जरूर चलते हैं।

यही बात पार्टीवालों के साथ-साथ, मुझे हमारे कार्यकर्ताओं से भी कहनी है। जितने भी हम सब कार्यकर्ता हैं और जो सर्वोदय की बात करते हैं, अगर उनके पास जमीन हो, तो वे उसका संपूर्ण स्वामित्व-विसर्जन क्यों नहीं कर देते? ग्रामदान के लिए गाँववाले अभी तैयार नहीं होते हैं, तो आप अपने दान का तो ऐलान कर दीजिये कि जिस दिन भी ग्रामदान होगा, हम उसमें शामिल ही हैं। तब तक आप अपना हिस्सा तो दे ही दीजिये और लोगों को समझाते भी रहिये। जब तक ग्रामदान नहीं होता है, तब तक आपकी बची हुई जमीन में जो पैदा होता है, उसे आप खा सकते हैं। हम यह नहीं कह रहे हैं कि आप भूखे रहिये या लंगोटी बांध कर घूमिये। यह तो गृहस्थों का आंदोलन है, फकीरों का नहीं। अपने लिए नहीं, सबके लिए इसमें कुछ करना है और बाँट-बाँट कर खाना है। इतना ही तो इसका अर्थ है! इसलिए कार्यकर्ताओं का कदम सर्वप्रथम इस काम में आगे बढ़ना चाहिए, ऐसी हमारी प्रार्थना है।

(बिहार प्रा० सर्वोदय-सम्मेलन, पूसा रोड, ता० २९-६ के भाषण का एक अंश)

www.vinoba.in

सविनय कानून-भंग के लिए नीति-मर्यादाएँ !

(रावसाहब (पु० ह०) पटवर्धन)

इन दिनों राजनीतिक दल अपना विरोध प्रकट करने के लिए सविनय कानून-भंग का सहारा बेखटके लेते जा रहे हैं ! अंग्रेजी राज में हम विरोध के प्रस्ताव आदि पास किया करते थे, आज़ाद भारत में हम मतभेद या विरोध प्रकट करने के लिए ही कानून-भंग का सहारा ले रहे हैं। डॉ० लोहियाजी और उनके समाजवादी पक्ष ने तो सविनय कानून-भंग को अपना एक दैनंदिन कार्यक्रम ही मान कर सतत और अखंड कानून-भंग का एक सिद्धांत बना लिया है। बल्कि आज के सभी राजनीतिक पक्षों ने, चाहे वे उग्रवादी हों या नरम दलीय; सविनय कानून-भंग को अपना सतत का एक कार्यक्रम मान लिया है।

जनतंत्र में सत्याग्रह को स्थान है या नहीं, यह एक जटिल और वादग्रस्त विषय है, जिसकी चर्चा मैं यहाँ नहीं करना चाहता। 'सत्याग्रह' शब्द के संबंध में अनेक वाद और मतभेद हैं। 'प्रतिकारात्मक सत्याग्रह को जनतंत्र में स्थान नहीं है', ऐसी विनोबाजी की राय अभी प्रकट हुई है। लेकिन इस अर्थ में सत्याग्रह का विचार गंभीरतापूर्वक करने के लिए आज कोई भी राजनीतिक पक्ष तैयार नहीं दीख रहा है। सविनय कानून-भंग के आंदोलन को जिन सैद्धांतिक और आध्यात्मिक विचारों से प्रत्यक्ष रूप में सहायता प्राप्त नहीं हो सकती, उन तत्त्वों का 'पिष्टपेषण' करते बैठना हमारे उग्रवादी नेताओं को स्वीकार नहीं है ! इसलिए सत्याग्रह-शास्त्र के संबंध में सैद्धांतिक फैसले का प्रयत्न करते रहने में आज कोई लाभ नहीं है। बदकिस्मती से 'सत्याग्रह' शब्द आज सविनय कानून-भंग का समानार्थी बन कर ही प्रयुक्त हो रहा है। पर दोनों में आकाश-पाताल के जितना अंतर है और श्री लोहियाजी ने भी इसे स्वीकार किया है ! कानून-भंग के लिए वे एक ही शर्त आवश्यक मानते हैं कि वह शांततायुक्त हो। इसलिए हम यहाँ सविनय कानून-भंग के संबंध में ही विचार करेंगे।

थोड़ी देर के लिए हम यह बात मान लेते हैं कि भारतीय जनतंत्र द्वारा सविनय कानून-भंग को वैधानिक समर्थन प्राप्त है। फिर प्रश्न यह उठता है कि जन-तंत्र की मशीनरी का ही यदि वह एक हिस्सा है, तो उसकी भी कुछ नीति, कुछ आचार-मर्यादाएँ हैं या नहीं ? स्वभावतः यह स्वीकार करना होगा कि उपद्रवादि मचाने के लिए गैरजिम्मेवारी से उसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। पर भिन्न-भिन्न राज्यों में जो सविनय कानून-भंग के आंदोलन चले, उनमें न ऐसी सावधानी बरती गयी, न इसका भान ही रखा गया। सत्याग्रह की व्यापक आध्यात्मिक भूमिका का विचार न करने पर भी जिस तरह का कानून-भंग-आंदोलन भिन्न-भिन्न राजनीतिक पक्षों द्वारा आज चलाया जा रहा है, उससे समाज की अहिंसा-वृत्ति के लिए या जनतंत्र के लिए पोषक वातावरण निर्माण हो रहा है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। सरकार को झुकाने के लिए और अपना विरोध तीव्र बना कर अपने पक्ष का महत्त्व बढ़ाने के लिए कानून-भंग-आंदोलन चलाये जा रहे हैं, इसका भान, आज चंद घटनाओं पर विहंगम दृष्टिपात करने से, सहज हो जाता है।

(१) पंजाब में आर्यसमाजियों द्वारा हिंदी-रक्षा-आन्दोलन चल रहा है। जवाहरलालजी ने श्री आत्मानंदजी के नाम लिखे अपने पत्र में यह स्पष्टतया बता दिया है कि आन्दोलन कितना बेबुनियाद है। उन्होंने कहा है, "पंजाब की प्रादेशिक योजना भिन्न-भिन्न विचारवालों की सलाह से ही बनायी गयी है। उससे हिंदी की हानि कैसे होती है, मैं नहीं समझ पा रहा हूँ।" पंजाब के हिंदी-प्रधान हिस्सों के लड़कों को गुरुमुखी में लिखी पंजाबी अनिवार्य रूप से न सीखनी पड़े, यह अब आर्यसमाजियों की माँग है, तो उधर अकाली दल ज्ञानी-सच्चर-समझौते में एक कॉमा का भी फर्क करने के लिए तैयार नहीं है और वह भी आंदोलन की धमकी दे रहा है !

(२) असम के उत्तर-पूर्व हिस्से में आदिवासियों के लिए हिन्दी का माध्यम स्वीकार किया गया, क्योंकि उनके लिए हिन्दी और असमी, दोनों माध्यम समान हैं। परन्तु चंद दिनों पहले ही मार्गारेटा के बेसिक ट्रेनिंग स्कूल के छात्रों ने इसके खिलाफ हड़ताल की और असमी भाषा के माध्यम का ही आग्रह रखा।

(३) तेल साफ करने की मिल खड़ी करने के संबंध में असम में आज कितनी उत्तेजना है, यह हम सब जानते हैं। काँग्रेस-सहित सभी राजनीतिक पक्ष आंदोलन की और प्रत्यक्ष कृति की भाषा बोल रहे हैं ! एक सर्वपक्षीय कृति-समिति भी बन गयी है। असम-विधानसभा में स्वयं एक काँग्रेस-सदस्य ही कहते हैं, "असम के तेल की हर बूँद असमियों के शरीर के खून के समान ही हम पवित्र मानेंगे और उसका शोषण हम हरगिज़ न होने देंगे।" प्रादेशिकता कहाँ तक पहुँच गयी है, इसकी यह एक मिसाल है ! अब 'भारत एक राष्ट्र है,' इस पर कोई विदेशी कैसे विश्वास कर सकेगा ! हमारी एक-राष्ट्रीयत्व की भावना कितनी क्षीण हो गयी है, यह इन अविवेकी भावनाओं की अभिव्यक्ति से स्पष्ट हो जाता है। मूलतः ये अविवेकी भावनाएँ ही इतनी प्रक्षुब्ध करने वाली हैं कि उनकी अभिव्यक्ति कानून के द्वारा करीब-करीब असंभव है ! भाषावार-प्रांतरचना में हमने यही स्थिति देखी। जो मानते थे कि हम पर अन्याय हुआ है, वे इतने क्रुद्ध हो गये कि वे विवेक तक खोने लगे।

(४) बिहार की कम्युनिस्ट पार्टी ने डॉ० लोहियाजी का अनुकरण करके अपना एक माँग-पत्र सरकार को दे दिया और धमकी दी कि उसे पूरा करें, अन्यथा आंदोलन चलायेंगे। अकाल वाले प्रदेशों में लगान की माफी हो, किसानों को तकावी मिले, आदि वे माँगें हैं ! पर ये कानून-भंग से ही कैसे पूरी हो जायेंगी ? लेकिन इसके कारण पक्ष का विज्ञापन होता है और उन्हें प्रतिष्ठा मिलती है, ऐसा उनका खयाल है !

(५) ब्रिटिश सत्ताधारियों की मूर्तियाँ हटाने का सत्याग्रह उत्तर प्रदेश में पूरा करने के बाद अब समाजवादी पार्टी मद्रास की ओर मुड़ी है। मद्रास को 'तमिलनाड' नाम दिया जाय, इसके लिए आंदोलन करने की धमकी वह दे रही है, ऐसी अखबारों की खबर है। 'द्रविड़ कळहम' वाले भी उनको इस काम में सहयोग देंगे !

इसकी एक और विशेषता है। तीर्थक्षेत्र में जैसे जातिभेद नहीं देखे जाते, वैसे कानून-भंग में विरोधी पक्ष अपना मूलभूत अंतर भूल कर भी पारस्परिक सहयोग के लिए तैयार हो जाते हैं। मार्क्सवादी, रॅडिकल पार्टी और प्रगतिवादी दल कानून-भंग के आंदोलन में जातीयवादियों और प्रतिगामी लोगों से भी सहयोग ले रहे हैं। राजनीतिक सिद्धान्तों को ऐसे आंदोलनों में कितना गौण स्थान प्राप्त हो जाता है और कैसे मौकापरस्ती आ जाती है, यह इससे जाहिर होता है। डॉ० लोहियाजी ने तो श्री राजाजी का भी आवाहन किया है और उनके जेल जाने से क्रांति होगी, ऐसा कहा है !

(६) 'द्रविड़ कळहम' वालों ने कई महीनों तक सांप्रदायिक आंदोलन चला कर राष्ट्रीय झंडा जलाना, मूर्ति भंग करना, 'रामायण' जलाना आदि कार्य किये और अब ब्राह्मणों के होटलों के साइनबोर्डों पर कोलतार फाँसने का कार्य वे करने वाले हैं !

(७) जालंदर में एक केंद्रीय मंत्री के दावत के मौके पर प्रजासमाजवादी पक्ष ने प्रदर्शन किये, तो गुण्डों ने स्वयंसेवकों को पीटा, पर पुलिस कुछ नहीं कर सकी। फलतः पंजाब प्रजा-समाजवादी पक्ष ने इसके लिए कानून-भंग चलाया।

(८) 'बंबई-सरकार पचास लाख रुपयों का नया सचिवालय बनाने की योजना अगर जारी रखती है', तो उसके लिए कानून-भंग का आंदोलन करने की धमकी बंबई के महापौर ने ही दी है !

भारत के आम चुनाव खुले और अच्छे वातावरण में अभी समाप्त हुए। हरेक राजनीतिक दल को उस समय यह अवसर प्राप्त था कि जनता के सामने जाकर अपने विचार और अपना कार्यक्रम बतायें। नये मंत्री-मंडल प्रांतों में अपने कामों में अभी-अभी लगे हैं। देश एक बड़ी गंभीर हालत में से गुजर रहा है। दूसरी पंचवर्षीय योजना पूरी करने के लिए हमें भगीरथ प्रयत्न करने हैं। अनाज की पैदावार बढ़े, हम स्वावलंबी हों और उत्साह का कण-कण देश के पुनर्निर्माण में हम व्यय करें, यह हमारी आज की राष्ट्रीय जिम्मेवारी है। ऐसे समय छोटी-छोटी बातों का क्षुद्र स्वार्थ के लिए उपयोग कर लेना अच्छी चीज नहीं है। सहयोग और सद्भावना की स्थापना ही आज आवश्यक है। उस रोज इन्कम टैक्स-विभाग के नौकरों ने एक केंद्रीय मंत्री को घेरा डाल कर रोक लिया। अखबारों ने भी "मंत्री भाग गया", कह कर मोटे टाइप में खबरें छापीं ! हमारा जनतंत्र कहाँ जा रहा है, यह इन घटनाओं पर से हम सहज सोच सकते हैं। शिष्टाचार और सदसद्विवेक बुद्धि आज मानों हम खो ही चुके हैं। निःसंदेह लोकतंत्र के लिए यह बड़ी घातक चीज है। उस रोज कम्युनिस्ट पार्टी के मंत्री ने कहा : "केरल में हम येनान प्रांत नहीं निर्माण करना चाहते।" लेकिन माओ की नयी घोषणा के संबंध में वे आगे कहते हैं, "सहिष्णुता और जनतंत्र की वह राह भारत की आज की परिस्थिति में कम्युनिस्टों के लिए बंधनकारक नहीं है। अहिंसा से ही सारे प्रश्न हल हों, ऐसा बंधन कम्युनिस्ट स्वीकार नहीं कर सकते !"

सरकार जनता के बल पर ही टिक सकती है और जनता की इच्छा से उसे बदला भी जा सकता है, यह केरल ने सिद्ध कर दिया है। अंग्रेजों के जमाने में यह कतई संभव न था। पर यहाँ के राजनीतिक पक्षों ने वह मूलभूत परिवर्तन अब भी ध्यान में नहीं लिया है। मौजूदा सरकार के बारे में मुल्क में आज भयानक कटुता और रोष बढ़ गया है।

www.vinoba.in

सारांश यह कि आज हमारे सामने घूसखोरी, टैक्स छिपाने की वृत्ति, अनाज का उत्पादन, सफाई आदि अनेक प्रश्न ऐसे मौजूद हैं कि जो भी पक्ष सत्तारूढ़ होगा, उसको ये हल करने ही होंगे। पर सारी जिम्मेवारी सरकार पर छोड़ कर आज हम अपनी शक्ति व्यर्थ गँवा रहे हैं। परिणामतः वातावरण कटु बन रहा है, गैर-जिम्मेवारी बढ़ रही है और बुनियादी सवाल जहाँ के तहाँ पड़े हैं।

"अखंड सत्याग्रह" के सिद्धांत के संबंध में डॉ० लोहियाजी कहते हैं, "परंपरा से साध्य अहिंसा का मार्ग सुरक्षित रखने के लिए सविनय कानून-भंग की आज आवश्यकता है।" मुझे लगता है, अहिंसा को यदि एक सामाजिक मूल्य के रूप में सुरक्षित रखना है और देश में जनतंत्र का वातावरण बनाये रखना है, तो राजकीय पक्षों को एकत्रित होकर सविनय कानून-भंग के बारे में भी कुछ नियम और मर्यादाएँ बना लेनी चाहिए। लोकमत को शिक्षित करने की दृष्टि से भी कुछ अवधि की आवश्यकता है। कानून-भंग प्रारंभ करने के पहले तटस्थ, निष्पक्ष और निःस्पृह लोकमत को आवाहन करके उसका उपयोग कर लेना चाहिए और जिस प्रश्न पर कानून-भंग शुरू करना है, वह न्याय्य और देशहित का है या नहीं, इसका निर्णय भी ऐसे तटस्थ लोकमत द्वारा हो जाना चाहिए। धमकी के रूप में कानून-भंग का उपयोग नहीं होना चाहिए। उसका अंतिम हेतु यह हो कि जनता कि राय के प्रति सरकार अधिक-से-अधिक जिम्मेवार बने और समाज में एकात्म-भावना भी कायम रहे। इसलिए किसी भी कृति के पूर्व लोकशिक्षण की तीव्र आवश्यकता है। अगर सविनय कानून-भंग धमकी के ही रूप में सामने आया, तो अहिंसा का रक्षण नहीं होगा। विनोबा और उनके जैसे सत्याग्रह-विज्ञान के जो ज्ञाता हों, उनकी राय भी ऐसे मामलों में नज़र-अंदाज़ नहीं की जा सकती।

सविनय कानून-भंग के पूर्व शांततापूर्ण प्रदर्शन होते हैं, लेकिन बाद में उसीमें से पुलिस और जनता के बीच संघर्ष खड़ा हो जाता है। परिणामतः लाठी और गोली चलती है। फिर जाँच की माँग होती है। इस चक्र में फँस कर जनता का बुद्धिभेद होते रहता है। पारस्परिक भावनाएँ दूषित होती हैं और नागरिक-कर्तव्य और जिम्मेवारी की तरफ से सब लापरवाह होने लग जाते हैं। पाकिस्तान, इंडोनेशिया और एशिया के अन्य मुल्कों में लोकतंत्र की कैसी छीछालेदार हो रही है और स्वराज्य कितना खतरे में आ रहा है, इस पर अगर हम गौर करें, तो भारत की गंभीर परिस्थिति का भान हमें हुए बगैर नहीं रहेगा।

मुल्क के राजनीतिक दलों से मेरी प्रार्थना है कि सविनय कानूनभंग की कुछ नीति-मर्यादाएँ और संकेत वे बना लें और ईमानदारी से उनका पालन करें। सरकार की नीति भी समझदारी और जिम्मेवारी से युक्त होनी चाहिए। बहुमत का अमरपट्टा उसे नहीं मान लेना चाहिए। काँग्रेस आज अपने को राष्ट्र की प्रतिनिधि संस्था मानती है। काँग्रेस याने राष्ट्र ही है, ऐसा समीकरण वह अब भी करती है। फलतः देश के निष्पक्ष और निस्पृह लोकमत की ओर दुर्लक्ष करने की उसकी प्रवृत्ति है। अंग्रेजों के जमाने में डॉ० सप्रू जैसे जो मध्यस्थ रहते थे, आज वैसे लोग नहीं हैं, यह एक विशिष्ट घटना है, जिसकी जिम्मेवारी काँग्रेस पर है! भिन्न-भिन्न लोगों की राय को भी मौका मिलना चाहिए। मुल्क में जनतंत्री ही कानून हो, तो भी यदि वह जनता को दो पाटों के बीच पीसने लगे, तो जनतंत्र कैसे टिक सकेगा? देश के निष्पक्ष और निःस्वार्थी लोगों की राय का आदर भी राज्यकर्ताओं को करना चाहिए। राजनीतिक मतभेद तो रहेंगे, लेकिन उनके बावजूद राजनीतिक पक्षों को साथ बैठ कर समान कार्य चुन लेने चाहिए, तभी लोकतंत्र टिक सकेगा।

(मूल मराठी, 'भूदानयज्ञ' से)

सबके बचाव का कीमिया!

हिन्दुस्तान में पश्चिम से एक हवा आयी। पार्टी बनती है, एक-दूसरे को गाली देते हैं। यह उसको गाली देता है और वह इसको गाली देता है और लोग दो गाली सुनते हैं। लोगों को कुछ काम नहीं। भेद बढ़ाने में ही इनकी अकल चलती है। वही पुरुषार्थ है, इनके लिए! परंतु भेद बढ़ाने के लिए पुरुषार्थ की कोई जरूरत नहीं है। देश में अद्वैतवादी शंकराचार्य जैसे महापुरुष पैदा हुए, जिन्होंने कुल दुनिया के भेद-भाव खतम किये। वह उनका अद्वैतवाद हम थोड़ा तो अमल में लायें। तब दुनिया का बचाव होगा और हम भी बचेंगे।

—विनोबा

(कोझीकोड़, केरल, ११-७-'५७)

महाराष्ट्र की चिट्ठी

महाराष्ट्र में प्राप्त ग्रामदानी गाँवों के पुनर्निर्माण-कार्य पर चर्चा करने के लिए महाराष्ट्र-मराठवाड़ा-भूदान-प्रकाशन-समिति ने ता० १२ जुलाई को पूना में एक बैठक का आयोजन किया। महाराष्ट्र के प्रमुख भूदान-कार्यकर्ता, राज्य-सर्वोदय-योजनाओं के संचालक, रचनात्मक संस्थाओं के प्रमुख और पुनर्निर्माण-कार्य के प्रेमी उपस्थित थे। प्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ डॉ० धनंजयराव गाडगीळ, प्रो० दाँतवाला, श्री शंकररावजी देव, बंबई राज्य के सहकार-मंत्री श्री भारदे, श्री नारायण देसाई, श्री अप्पासाहब पटवर्धन आदि उपस्थित थे। श्री अण्णासाहब सहस्रबुद्धे अस्वास्थ्य के कारण नहीं आ सके।

बैठक के आयोजक श्री गोविंदराव देशपांडे ने बताया कि ग्रामदानी गाँवों के पुनर्निर्माण की दृष्टि से किस तरह की योजनाएँ बनायी जा सकती हैं, इसका मार्ग-दर्शन प्रस्तुत सभा द्वारा हो और ग्रामदानी गाँवों की जनता की अपेक्षाएँ एवं वहाँ की आवश्यकताएँ ध्यान में लेकर ही कार्यकर्ताओं को कार्य की दिशा तय करनी है। जिलों के कार्यकर्ताओं ने भी अपने-अपने जिलों के ग्रामदानी गाँवों की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं भौगोलिक परिस्थितियाँ निवेदन कीं। सर्वत्र अनाज-पानी की कमी, दरिद्रता, शिक्षा का अभाव, शराब की आदत, शोषण आदि कैसे फैले हुए हैं, इसकी झाँकी उन्होंने प्रस्तुत की। तदनन्तर पुनर्निर्माण-कार्य की भूमिका प्रस्तुत करते हुए श्री शंकररावजी ने कहा :

"ग्रामराज्य की बात अब कल्पनिक या स्वप्नदर्शी योजना नहीं रही, बल्कि अल्प मात्रा में ही क्यों न हो, वह प्रत्यक्ष में आ रही है और विचारकों को भी इसका महत्त्व प्रतीत होने लगा है। अहिंसात्मक समाज के पुनर्निर्माण का साधन ही हमें प्राप्त हुआ है। शासनमुक्त समाज-निर्मिति का लक्ष्य कोई नया लक्ष्य नहीं है, लेकिन साध्य-साधन-संगति का विवेक न रखने से ही इस कार्य में दुनिया को अपयश प्राप्त हुआ है, ऐसा गत पचास साल का इतिहास है। अतः साध्य और साधन में शुद्धता और संगति रखनी ही चाहिए। गाँवों की योजना भी ग्रामसंघ के से निर्माण होनी चाहिए। इस संकल्प-सिद्धि के लिए योजना ऐसी होनी चाहिए कि उसमें गाँव की उपक्रमशीलता, चिंतनशीलता और क्रियाशीलता जाग्रत रहे और उनका साथ-साथ विकास होते रहे।"

डॉ० धनंजयराव गाडगीळ ने श्री शंकररावजी की मूल भूमिका से सहमति प्रकट करते हुए कहा, "ग्रामदान का महत्त्व मुझे पूर्णतः जँच गया है। व्यावहारिक दृष्टि से भी ग्रामदान का महत्त्व बढ़ाना हो, तो ठोस कार्य लोगों को प्रत्यक्ष में नजर आना चाहिए। ग्रामदान से देश में वैचारिक क्रांति हुई है। लोगों की यह श्रद्धा नष्ट न हो, इसके लिए हमें पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए। ग्राम-संकल्प करते समय ग्रामीणों को शिक्षा देना और उनका उचित मार्गदर्शन करना भी अत्यावश्यक है और इसमें कुछ विसंगति है, ऐसा मैं नहीं मानता।"

श्री भारदेजी ने ग्रामदानी गाँवों को यथासंभव पूरी मदद करने की सरकार की नीति प्रकट की और कानूनी बाधाएँ भी दूर करने का आश्वासन दिया।

इसके बाद ग्रामदान की व्याख्या, ग्रामदान करने वाले और लेने वाले कौन माने जायँ, आदि कानूनी बातों पर चर्चाएँ हुईं। ग्रामदानी गाँवों को तात्कालिक मदद पहुँचाने की दृष्टि से आज की ही प्रस्थापित किसी रजिस्टर्ड संस्था की सिक्युरिटी (जमानत) का लाभ लिया जाय, यह तय हुआ। लंबी अवधि की योजनाओं का विचार करते हुए यह भी तय हुआ कि ग्रामदानी गाँवों में सहकारी सोसाइटियाँ व अनाज-बैंकें स्थापित की जायँ।

ग्रामदानी गाँवों में खेती के सिवा ग्रामोद्योग शुरू करना भी जरूरी है। अ० भा० ग्रामोद्योग-कमीशन के सदस्य श्री द्वारकानाथजी झेले ने आश्वासन दिया कि उन गाँवों के कार्यकर्ताओं ने यदि योजनाएँ बना कर दीं, तो वे यथासंभव पूरी मदद करेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि कोई भी योजना बनाते समय दृष्टि यही रहे कि गाँव का हर आदमी उत्पादक बने और हरेक मनुष्य की प्रत्येक शक्ति का पूरा उपयोग हो।

—निवेदक

—अर्थशास्त्र का जितना भी अभ्यास मैं करता हूँ। मेरा विश्वास दृढ़ होता जाता है कि लोगों की कंगालियत दूर करने के लिए (अर्थशास्त्रीय) पुस्तकों में जो लिखा गया है, वह कोई उपाय ही नहीं है। उसका उपाय तो है, आय और व्यय परस्पर-संग च , जो ग्रामोद्योगों से ही संभव है।

—गांधीजी

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

२ अगस्त सन् १९५७

वीश्व-शांती की शक्ती कैसे प्रकट होगी ?

(वीनोबा)

राजा दुष्यंत हीरन का शीकार करने आये। धनुष्य तैयार करके अुस पर बाण चढ़ाया ही था की आश्रम का अेक छोटा-सा बालक सामने खड़ा होकर दुष्यंत से कहता है :

"आश्रमार्थं मृगः न हन्तो, न हन्तव्यः

—यह आश्रम का मृग है। अुसको मारो मत, मारो मत।"

अेक बड़े बादशाह का सामना आश्रम का अेक छोटा-सा बालक कर रहा है ! बालक की आवाज जैसे ही नीकली, राजा भी रुक जाता है। पर बोलने वाला वह बालक, बालक नहीं था; मानव-हृदय था, जो बोल रहा था ! जहां मानव-हृदय क्षुब्ध होकर खड़ा हो जाता है, वहां बादशाह भी रुक जाता है ! यह दृश्य सुअेज़ के मामले में भी अीस ज़माने में देखा गया। आखीर अींग्लैंड-फ्रांस को अपना क़दम पीछे लेना पड़ा। अीसलीअे मैं कहता हूं की अब दुनीया की वीवेक-बुद्धी जाग गयी है। अतः दुनीया में शस्त्र कीतने ही बढ़े हों, शस्त्रों का परीत्याग करने की हीम्मत अब करनी चाहीअे। पर जो द्वेष करना छोड़ेंगे, वे ही यह हीम्मत कर सकेंगे। जीनका जीवन कन्याकुमारी से हीमालय तक अेकात्म बन गया है, सबके लीअे सहानुभूती और करुणा से हृदय भरा है, अैसा भारत जब हम बनायेंगे, तब शस्त्र की जरूरत ही नहीं होगी। नैतीक शक्ती से ही अुसका अुद्धार होगा।

आज वीश्व-शांती की जीतनी भूख है, अुतनी शायद ही कीसी ज़माने में रही होगी। रशीया में अभी जो घटनाअें हुअीं, वे आप जानते हैं। सच्चा कारण तो कोअी नहीं जानता, परंतु जो कारण जाहीर कीया है, वह बात भी छोटी नहीं है ! अुन्होंने कहा है की "हम सारी दुनीया के साथ शांती रखना चाहते हैं। अतः शांती के लीअे हमारी जो योजना है, अुसके वीरोधीयों के हाथ में हम सत्ता रखना नहीं चाहते।" जीनको हटाया है, अुनको हटाना कोअी छोटी चीज़ नहीं है। तो यह घटना बता रही है की रशीया भी अपने पुराने ढंग से तंग है, वह भी समझ गया है की अब शांती की बहुत जरूरत है। तो, हम अपने देश में वह ताक़त पैदा कर सकते हैं, जो हमारे लोगों के खून में भरी है और जीससे वीश्व-शांती हो सकती है।

लेकीन यह शक्ती देश में कैसे पैदा होगी ? नीर्भयता से, परस्पर-प्रेम से और अेक-रसता से ही शक्ती पैदा होगी। अीस वास्ते अैसा काम हम करें, जीसमें भेदभाव की गुंजाअीश ही न रहे। ये सारे भेदभाव हम नीकाल देंगे, तो भारत की वीशाल शक्ती प्रकट होगी।

(कोझीकोड, केरल, ११-७)

विदेश के मित्रों द्वारा–

श्री डेविड् हॉगेट का पत्र :

[श्री पीरी सेरेसोल द्वारा स्थापित एक आंतर्राष्ट्रीय समाज-सेवा-संघ है, जिसका लक्ष्य है कि वर्ण-धर्म, राज्य और देश का कोई भेद न मान कर दुनिया में सर्वत्र विधायक परिश्रम द्वारा प्रत्यक्ष समाज-सेवा करना। श्री डेविड हॉगेट इसी संस्था के एक सदस्य हैं। पिछले दिनों समाज-सेवा के निमित्त हिंदुस्तान में वे काफी दिन रहे और बिहार में एवं अन्यत्र शारीरिक परिश्रम के द्वारा इन्होंने रचनात्मक कामों में तथा कोशी-प्रोजेक्ट में काम किया। यहाँ वे बिलकुल हिंदुस्तानी बन कर रहे। उनकी पोशाक भी कमीज और धोती ही रही। भूदान को ओर वे खिंचे गये। श्री जयप्रकाशजी के सोखोदेवरा-आश्रम में भी वे रहे। उन्होंने हिंदी भी यहाँ सीख ली। हिंदी में भूदान-साहित्य बराबर पढ़ लेते हैं। वे एक अविवाहित नौजवान और उत्साही कार्यकर्ता हैं और लकड़ी के काम के एक बड़े कुशल कारीगर भी हैं। यहाँ से लौट कर वे इंग्लैण्ड में भूदान का काम करते रहे। इस बीच एक दुर्घटना में उन्हें काफी चोट पहुँची और प्लास्टर में वे अस्पताल में पड़े रहे। आज दुनिया को जिस तरह के विश्व-व्यापी भावना रखने वाले नागरिक सेवकों की आवश्यकता है, वैसे ही श्री डेविड् हॉगेट हैं। उनका लंदन से लिखा पत्र सर्व-सेवा-संघ, खादीग्राम के श्री गोविंदरावजी के नाम आया है, जो पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दे रहे हैं। —सं०]

"ता० २१ जून को श्री डोनाल्ड ग्रूम मिले। बहुत संतोष हुआ। दो साल पहले हम लोग भारत में मिले थे। उन्होंने भूदान की ताज़ा खबरें सुनायीं और वे मैंने बड़ी उत्सुकता से सुनीं। हिंदी-अंग्रेजी भूदान-साप्ताहिकों की भी इस संबंध में बड़ी सहायता मिली। श्री डोनाल्ड से यह जान कर मुझे संतोष हुआ कि हिंदुस्तान के लोग मेरे समाचार जानने के लिए उत्सुक हैं और स्वयं विनोबाजी को मेरी दुर्घटना की जानकारी है। जनवरी में मैंने अपनी जो हालत लिखी थी, आज भी करीब-करीब वैसी ही है। छाती के नीचे की ओर का हिस्सा, हाथ आदि निकम्मा हो गया है। लेकिन अपने भीतर मैं बहुत शांति और समाधान अनुभव करता हूँ। सबसे बड़ी बात यह है कि मेरा दिमाग अभी एकदम साफ और ठीक-ठीक काम कर रहा है।

"अगर लंदन में सत्याग्रह-युनिट कायम होता है, जिसकी कि मुझे अब भी उम्मीद है, तो मैं फौरन उसका सदस्य हो जाऊँगा। लेकिन अगर यह न हो सका, तो भूदान का काम करने के लिए हिंदुस्तान में लौट आने की इच्छा है। मेरी शारीरिक हालत देखते हुए अभी यह संभव तो नहीं दीखता, लेकिन फिर भी इतनी उम्मीद तो है कि मैं इस योग्य रह पाऊँगा कि अपने दिमाग को मानव-जाति की सेवा के लिए मैं लगा सकूँ।

"हिंदुस्तान के दोस्तों को मेरे सलाम। विनोबा और उनके काम में दुनिया की बहुत बड़ी आशाएँ और उम्मीदें देखता हूँ। ग्रामदान के रूप में भूदान-आन्दोलन का नया मोड़ और संगठनों के कटघरे तोड़ कर की हुई तंत्रमुक्ति, उन्मुक्त आंदोलन की दिशा में क्रांतिकारी कदम ही हैं।" —डेविड् हॉगेट

श्री डोनाल्ड का पत्र :

[श्री डोनाल्ड ग्रूम गत १६ वर्ष तक भारत में रहे। विनोबाजी के आन्दोलन से प्रभावित होकर मध्यप्रदेश में उन्होंने भूदान-पदयात्रा की। चंद दिन पहले वे इंग्लैण्ड गये। उनके एक पत्र का, जो श्री दादाभाई नाईक के नाम है, कुछ हिस्सा पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दे रहे हैं। —सं०]

"कालड़ी-सम्मेलन का अनुभव अवश्य ही बड़ा हृदयस्पर्शी रहा होगा। उससे भूदानयज्ञ-आरोहण के लिए नया प्रकाश तथा कार्यकर्ताओं को नयी स्फूर्ति मिली होगी। इंग्लैण्ड में मैं अपना समय, देश भर घूम कर विनोबाजी और उनके आरोहण के बारे में व्याख्यान देकर बिता रहा हूँ। लोग उससे बहुत आकर्षित और अभिभूत होते हैं और बहुत से मानते हैं कि विनोबाजी का सन्देश पश्चिम की समस्या का सही हल है। आगामी तीन माह तो इसी तरह घूमते व्याख्यान देते बीतेंगे। यहाँ विनोबाजी के बारे में कितनी कम जानकारी है !···कुछ दिन पहले यार्कशायर में मुझे ११ दिनों में १६ बार बोलना पड़ा।

"ता० १८ अक्टूबर को समुद्री मार्ग से लन्दन से प्रस्थान कर भारत लौटने का मेरा विचार है। द फ्रेण्डस् सर्विस कौन्सिल और सोसाइटी ऑव फ्रेण्डस् (क्वेकर्स) का सेवा-विभाग अपनी ओर से, खासकर विनोबाजी के आन्दोलन के साथ सहयोग देने के लिए मुझे भेज रहा है। ···मैं फिर से भारत का मेहमान बनूँगा। श्री होरेस अलेक्जैण्डर भी जाड़े में भारत में पाँच माह रहेंगे।" —डोनाल्ड ग्रूम

www.vinoba.in

संस्कृत-शब्दों की कीमिया और—

शब्द-सृष्टि के ईश्वरों का महान् दायित्व !

(विनोबा)

साहित्यिक स्वयं नम्र होते हैं। लेकिन नम्र होते हुए भी वे बहुत ऊँचे होते हैं। नम्रता से ही उनकी ऊँचाई बढ़ती है।

शब्द की हम बहुत कीमत करते हैं। शब्द में जो शक्ति है, वह किसी चीज में हमने नहीं देखी। हमारे जीवन पर शब्द का जो असर है, उसके अनुभव से हम यह कह रहे हैं। पाणिनी का एक सूत्र है : "एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सम्यक् प्रयुक्तः स्वर्गलोके कामधुक् भवति।"—एक शब्द का भी उच्चारण होता है, तो 'स्वर्गलोके कामधुक्' होता है ! संस्कृत भाषा में शब्द-शक्ति पहले बहुत प्रकट हुई। अंग्रेजी भाषा में भी लाखों शब्दों का संग्रह है। परंतु वह केवल शब्द-संग्रह होता है, उससे शब्द-शक्ति प्रकट नहीं होती। एक-एक यंत्र के असंख्य पुरजे होते हैं। प्रत्येक का अलग-अलग नाम होता है। इस तरह एक-एक यंत्र में १०-१०, ५०-५० शब्दों का उपयोग होता है। परंतु ऐसे शब्द-भंडार से शब्द-शक्ति बढ़ती है, ऐसा नहीं ! वह तो ऐसी बात है कि जीवन में जितना परिग्रह बढ़ेगा, जितना कचरा बढ़ेगा, उतने शब्द भी बढ़ेंगे ! वह तो शब्दों का ढेर ही होगा। पर उससे विचार-संपदा नहीं बढ़ती। अंग्रेजी में विचार-संपदा बहुत है, लेकिन हम संस्कृत में शब्द की जो महिमा देखते हैं, वह महिमा वहाँ नहीं है। ५० नयी-नयी चीजें बनेंगी, तो उनके लिए ५० नये शब्द होंगे। परंतु ऐसे शब्दों के संग्रह से व्यर्थ परिग्रह हो जाता है, यह अब पाश्चात्य लोग भी समझ गये हैं। इसलिए एक-एक यंत्र के एक-एक पुरजे को वे अलग-अलग नाम नहीं देते, आँकड़ों में नाम देते हैं। किसी यंत्र का पुरजा खरीदना है, तो कहेंगे : "फलाँ यंत्र का पुरजा नंबर फलाँ-फलाँ।" आँकड़ों में ही माँग भी की जायगी ! इस तरह यंत्रों के पुरजों को अनेक नाम देने के बजाय आँकड़ों से काम लेने लगे।

परंतु संस्कृत में हम क्या देखते हैं ? संस्कृत में विचार के प्रतिनिधि के तौर पर शब्द बनाये हैं। जैसे, यह 'पृथ्वी' है। इंग्लिश में कहते हैं,'अर्थ', लैटिन में कहेंगे 'टेरा'। इस तरह एक शब्द है, 'अर्थ' और दूसरा शब्द है 'टेरा।' लेकिन संस्कृत में पृथ्वी के लिए ५० शब्द मिल जाते हैं। 'पृथ्वी' याने फैली हुई, 'धरा'—धारण करने वाली, 'भूमि'—तरह-तरह के पदार्थों को जन्म देने वाली, 'गुर्वी'—भारी; वजनदार, 'उर्वी'—विशाल, 'क्षमा'—सहन करने वाली; हम लात मारते हैं, तो भी वह सहन करती है। इस प्रकार एक-एक शब्द एक-एक गुणवाचक है। एक-एक शब्द के साथ उसका एक-एक गुण ध्यान में आयेगा। कवि कविता में कोई भी शब्द मात्रा देख कर रख देते हैं। वे समझते हैं कि छंद बनाने के लिए ही इतने शब्द हैं। पर वे छंद के लिए नहीं हैं। विशेष गुण-दर्शन के लिए, एक-एक वस्तु के लिए वे अनेक शब्द हैं। जब हम व्यापक, फैली हुई "पृथ्वी" कहते हैं, तो हम उस पदार्थ की तरफ अंदर से देखने लगते हैं।

इस तरह संस्कृत शब्दों में विचार भरा है, इस वास्ते हरेक शब्द हमसे बात करता है ! इस तरह अंग्रेजी शब्द बात नहीं करता ! 'वॉटर' शब्द हमसे बात नहीं करता, हम ही उससे बात करें, तो बात अलग है ! लेकिन संस्कृत शब्द हमसे बात करने लगता है। 'पयः'=पोषण करने वाला। 'पानीयम्'=तृप्त करने वाला। 'उदकं'=अंदर से बाहर आया हुआ। 'समुद्र' छोटा-सा शब्द दीखता है; लेकिन वह भी बात करता है। 'सम' याने चारों तरफ समान फैला हुआ, 'उद्' याने ऊँचा उठा हुआ, ऊँचा आया हुआ पानी। 'रम' याने आल्हाददायक, जो खेल रहा है, उछल रहा है, आनंद देता है। तो 'समुद्र' याने सम+उद्+रम ! 'समुद्रात् ऊर्मिः मधुमान् उदारत्।' वेद ने कहा है : इस हृदय में समुद्र के समान असंख्य भावनाएँ उठती हैं। यह हृदय याने समुद्र ही है। समुद्र का दृश्य इस हृदय में प्रकट होता है। पर 'सी' (sea) कहेंगे, तो क्या होगा ? है वह एक पदार्थ। वह शब्द बोलता नहीं, मूक है।

'दुग्धम्'=दोहन किया हुआ, सार रूप ! 'घृतम्'=अत्यन्त पवित्र, निर्मल, कचरा निकाला हुआ। 'घृतं मे चक्षुः' विश्वामित्र बोल रहा है : 'मेरी आँख याने घी है।' किसी अंग्रेजी या दूसरी भाषा में यह नहीं देखा कि कोई कहे, 'मेरी आँख घी है !' 'घृतं मे चक्षुः' कहा, तो उसका अर्थ है, 'मेरे चक्षु इतने पवित्र हैं कि उनमें किसी प्रकार का पाप ग्रहण करने की शक्ति नहीं है, वह अत्यन्त निर्मल और स्वच्छ है।'

'अग्नि' याने 'फायर'। पर 'फायर' कहने से कुछ बोध हुआ ? कुछ नहीं। लेकिन 'अग्नि',अंजनात् अग्निः; तो रूप प्रकट हो गया, व्यक्त हो गया। 'वह्निः'=वह वाहक है, ले जाता है, संदेश-वाहक है। यज्ञ में आहुति डालते हैं, तो वह अग्नि आपकी भक्ति ऊपर भगवान् के पास पहुँचाता है। तो 'अग्निमिळे पुरोहितम्' के बदले 'वह्निमिळे पुरोहितम्' नहीं चलेगा ! बिल्कुल ही दूसरा अर्थ होगा ! इस तरह एक-एक शब्द का विशेष महत्त्व है। संस्कृत में एक-एक शब्द का व्यक्तित्व है। 'पीयूषं','अमृतं', 'सुधा'; ये तीन शब्द अमृत के लिए हैं, परंतु हरेक से विशेष अर्थ का बोध होता है। 'अमरा निर्जरा देवाः' अमरकोश का आरंभ ही इस वाक्य से होता है। 'अमरा' अलग है और 'निर्जरा' भी अलग है। अमर तो वह है, जो मरता नहीं। लेकिन मान लो कि बूढ़े हैं, रोग से पीड़ित हैं, तो क्या वे अमर होना पसंद करेंगे ? वे तो भगवान् से प्रार्थना करेंगे कि मुझे जल्दी ही ले जा ! इसीलिए 'निर्जरा' कहा है। 'निर्जरा' याने जरा-रहित। जरा-रहित होंगे, तब तो वे अमर हो सकते हैं !

संस्कृत का शब्दकोश भी काव्य रखता है। एक शब्द की कितनी तरह से व्युत्पत्ति होती है ! एक शब्द के अनेक अर्थ और अनेक अर्थ का एक शब्द ! इसलिए वाक्-प्रकाशन निर्मलता से संस्कृत में जितना होता है, उतना शायद ही किन्हीं दूसरी भाषाओं में होता होगा। मैं कहना चाहता हूँ कि इस देश में शब्द-शक्ति बहुत है। अरेबिक, ग्रीक, लैटिन इनमें भी कुछ शक्ति है। उनसे कुछ तुलना हो सकती है, परंतु संस्कृत का शब्द जैसे व्याख्यान देना शुरू करता है, वैसे वहाँ के शब्द नहीं देते। "घट" शब्द है। "घट" याने घड़ा। परंतु "घट" याने शरीर, यह भी अर्थ होता है। घड़े में पानी रखते हैं, वैसे इस शरीर में क्या है ? पानी ही भरा है। हम स्वागत करते हैं, पानी से भरे हुए घड़े द्वारा, पूर्ण कुंभ से। तब हम क्या दिखाना चाहते हैं ? यही कि हमारा सारा हृदय भक्तिभाव से भरा है। इस अर्थ में वह "घट" शब्द काम देगा। नानक ने कहा है "प्रभु घट-घट में भरा है।" हमारे सामने जो बैठे हैं, सब घट ही हैं, सब भरे हैं ! यह पता नहीं कि किससे वे भरे हैं ! यह भी हो सकता है कि कुछ नाहक चीजों से भी भरे होंगे। कहने का मतलब यह कि"घट" शब्द की यह खूबी है। 'पॉट' (Pot) कहने से वह प्रकट नहीं होती, क्योंकि घट की एक घटना है न ? हमारा शरीर एक घटना रखता है। वैसे तो "घट" शब्द घटना को सूचित करता है। इस तरह अंग्रेजी, फ्रेंच आदि शब्द हमको उनके अंदर पैठने नहीं देते, लेकिन यहाँ के शब्द हमको अपने में प्रवेश देते हैं। इसीलिए शब्द की शक्ति प्रकट होती है।

"चक्षु" शब्द है। "चक्षु" धातु निर्मलता, स्वच्छता का द्योतक है। आँख से हम जितना बोलते हैं, उतना मुँह से नहीं बोलते। हमको गुस्सा आता है, तो आँख बोलती है ! अंदर करुणा है, तो आँख बोलती है ! शब्द से अधिक प्रकाश आँख देती है। उसी तरह "व्याचक्षते" याने व्याख्यान देना। चक्षु पर से ही व्याख्यान शब्द निकला है। हम हिंदुस्तान के लोग ज्यादा व्याख्यान सुनना नहीं चाहते, इतनी हमारी महापुरुषों के दर्शन पर श्रद्धा है। उनकी आँख से जो दीखता है, वह किसीसे भी प्रकट नहीं होता ! उनकी आँख में कारुण्य भरा रहता है। "कारुण्य" याने भी क्या ? मर्सी, काईन्डनेस-कुछ भी कहो; लेकिन अर्थ प्रकट नहीं होता। परंतु "करुणा" क्या कहती है ? वह कुछ-न-कुछ 'करने' की प्रेरणा देती है। हृदय में प्रेम है, परंतु करने की प्रेरणा नहीं, तो वह 'करुणा' नहीं। करुणा चुप नहीं बैठती। लोग पूछते हैं, "बाबा घूमता क्यों है ? थकता कैसा नहीं, इतना घूमने पर भी ?" तो यह करुणा ही है, जो उसे घुमाती है। वह कुछ करने के लिए बाबा को प्रेरित करती है, बैठने नहीं देती। एकाध बच्चे को बिच्छू ने काटा, तो क्या हम देखते ही रहते हैं ? एकदम सेवा करने के लिए दौड़े नहीं जाते हैं ? करुणा भी आसन पर बैठने नहीं देती, उठने की ही प्रेरणा देती है। यह हमारी "बुद्धि" है ! वह बोध देती है, यह उसका विशेष लक्षण है। हमारे सामने शुभ्र वस्त्र हम देखते हैं। शुभ्र याने क्या ? "शुभ्र" याने पवित्र। "शुभ्र" याने सिर्फ 'व्हाइट' नहीं। शुभ शब्द के साथ उसका संबंध है। शोभा से ही उसका संबंध है। तो सौंदर्य, पावित्र्य एक कर दिया है। सामने "शुक्र" का आकाश में उदय होता है। शुक्र पवित्र है। "शुचि" शब्द से शुक्र हुआ है। उसे देखते हैं, तो पावित्र्य की भावना प्रकट होती है। "सूर्य" है। वह प्रेरणा देता है। "सू" धातु से "सूर्य" बना। "सू" याने प्रेरणा देना। "मित्र" शब्द है। मित्र क्या करता है ? प्रेम करता है। सूर्य को "मित्र" संज्ञा हिंदुस्तान के लोग देते हैं। उसकी किरणों से, वे प्रखर होते हुए भी हम घबड़ाते नहीं। मित्र तो वे होते हैं, जो हमसे कार्य कराते हैं। हम सोते रहते हैं, तो वह जगाता है। बैठे हैं, तो वह काम करवायेगा। यह सारा यत्न करने वाला' मित्र है। तो 'मित्र' संज्ञा केवल सूर्यवाचक ही नहीं है, 'प्रेम से सबकी सेवा करने वाला अर्थ भी उसमें आता है। हम यहाँ बैठे हैं। कमरे के दरवाजे बंद हैं। सूर्य नारायण बाहर उग रहा है, तो वह क्या करता है ? वह हमारी सेवा करना चाहता है। सेवक के नाते हमारे दरवाजे पर हाथ रख कर तत्पर रहता है। हम थोड़ा-सा दरवाजा खोलेंगे, तो थोड़ा-सा ही वह अंदर आयेगा। एकदम पूरा खोल

www.vinoba.in

देंगे, तो वह भी अंदर मुक्त रूप से प्रवेश करेगा। परंतु दरवाजा बंद है, इस वास्ते धक्का नहीं देगा, दरवाजे को। बाहर खड़ा रहेगा! यह "मित्र" की मर्यादा है! वह कभी गैर-हाजिर नहीं रहेगा। स्वामी चाहे सोता रहे देर तक, पर वह नहीं सोयेगा! इस तरह सेवक का पूरा चित्र सूर्य में हम देख सकते हैं। इस प्रकार शब्द हमसे बोलते हैं।

इस प्रकार की साहित्य-शक्ति भारत में है, इस पर आपका अभी तक ध्यान नहीं गया है। ध्यान तब तक नहीं जायेगा, जब तक हम जीवन के अन्दर प्रवेश नहीं करेंगे। 'सुमन' याने उत्तम पुष्प। वह हम अर्पण करते हैं, याने हमारा स्वच्छ, निर्मल जो मन है, वह हम अर्पण करते हैं। यह "सुमन" की खूबी दूसरे शब्दों में नहीं है। तो, यह सब ध्यान में रख कर हमको अपना चिंतन ठीक ढंग से करना चाहिए, तभी हिंदुस्तान का चिन्तन दूसरे देशों से भिन्न होगा। आज क्या करते हैं? बाहर से-इम्पोर्टेड-शब्द लाते हैं और हमारी भाषा में लादते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारे जीवन में वह शब्द 'एसिमिलेट' (हजम) नहीं होता।

(केरल के साहित्यिकों के बीच (पूर्वार्ध), कोझीकोड़, ता. १२-७)

शब्द-शुचित्व और शब्द-महिमा!

(विनोबा)

अब 'सेक्युलर स्टेट्' की ही कल्पना लीजिये। यह बिल्कुल एकांगी कल्पना है! वह हमसे 'एसिमिलेट' नहीं हो सकती। यूरोप में वैसी परिस्थिति थी, तो वहाँ वैसा रिवाज चल सकता था। हिंदुस्तान में 'धर्म' शब्द निकला। धर्म याने क्या? धर्म याने सबको धारण करना है। स्टेट् का भी धारण करना है। 'स्टेट् का धर्म से कोई ताल्लुक नहीं,' ऐसा कोई कहता है, तो इस बात का हिंदुस्तान में बिलकुल ही अलग अर्थ होता है! क्या ऐसा है कि 'सेक्युलर' याने परलोक का विचार नहीं करना चाहिए और इहलोक का विचार करने वाली ही यह संस्था है? फिर भी एकता, समता को तो मानते हैं! तब यह विरोधी कल्पना लोग कैसे मान सकते हैं? इहलोक की तो प्रतिष्ठा करेंगे और सबको समान वोट का अधिकार भी देंगे! तो बताइये कि समान वोट के अधिकार का अधिष्ठान क्या भौतिक सृष्टि के अनुकूल है? इसका कोई उत्तर उनके पास नहीं है। बाह्य समानता तो किसी भी हालत में नहीं हो सकती, क्योंकि एक शख्स बलवान् होता है, तो दूसरा दुर्बल। तो स्पष्ट है कि हमारे शरीर से यह संबंधित नहीं है। बुद्धि के आधार पर निर्णय लिया हो, तो किसीको बुद्धि होती है, किसीको नहीं! एक घर में ज्ञानी भी होता है, अज्ञानी भी। तो फिर सबको एक वोट का अधिकार देने के पीछे क्या हेतु है? इसका उत्तर आध्यात्मिक सृष्टि में गये बगैर नहीं मिलेगा! जहाँ आपने एक वोट का अधिकार सबको दिया, वहाँ आपने आत्मिक एकता कबूल की। अगर बुद्धि तक ही आप सीमित रहना चाहते हैं, तो 'हरेक मनुष्य को एक वोट', यह विचार ही खत्म हो जाता है! फिर भी सबको एक वोट दिया है, तो आपने कौनसा साम्य देखा? क्या भौतिक साम्य देखा? नहीं, आत्मिक साम्य ही देखा है। इसका मतलब है कि आपने आत्मा की एकता मान्य की है! 'हम तो केवल भौतिक चिंतन करते हैं,' यह दावा अब आप नहीं रख सकते! याने 'सेक्युलर स्टेट्'में 'स्पिरिचुअल वैल्यू' आपने मान्य की! 'सेक्युलर स्टेट्' शब्द की न्यूनता ध्यान में आयी, तो सबको एक वोट का अधिकार दिया गया! तो, ठीक शब्दों का उपयोग करते हैं, तो अच्छा है, अन्यथा उससे गलत धारणा भी हो जाती है। 'इन्डिपेन्डन्स' कितना निकम्मा शब्द है! दुनिया में क्या होता है? हर शख्स तो एक दूसरे पर अवलंबित ही है! तब कहाँ रहा इन्डिपेन्डन्स? लेकिन 'स्वराज्य' पॉज़िटिव (भावात्मक) अर्थ बताता है। स्वयमेव राज वह होता है। वह स्वयं-प्रकाशित होता है। आज तो हम यहाँ परदेश की ही बुद्धि लेते हैं, तो वह 'स्वराज्य' कैसा होगा? केवल हमारा राज हम चलाते हैं, इतने से क्या हो गया 'स्वराज'? वेद में आदित्य को स्वराज्य की उपमा दी है! सूर्य है "स्वराट्", क्योंकि वह स्वयंप्रकाशित है। चंद्र है, पर-प्रकाशित। वेद में अत्रि के मंडल में कहा है: "य ते महि स्वराज्ये"—"स्वराज्य के लिए हम यत्न कर रहे हैं।" आप क्या समझते हैं कि उस जमाने में किसीका उन पर राज था या वे परतंत्र थे? ऐसा अर्थ नहीं है। मतलब यह है कि जब तक बुद्धि आत्मनिष्ठ नहीं होती, तब तक स्वराज्य नहीं! अंदर से प्रकाश मिलेगा, तो स्वराज्य प्रकट होगा। परंतु आप कहते हैं, इन्डिपेन्डन्स! परंतु किसीका किसीसे बनता नहीं!

आप कहते हैं, 'सोशिआलिस्टिक स्टेट्' बनानी है। हिटलर का भी एक प्रकार का सोशिआलिज्म ही था! तो इस शब्द से कुछ अर्थ ही नहीं निकलता। व्यक्ति को समाज से अलग निकालते हैं और समाज को व्यक्ति से अलग समझते हैं, तब कैसे अर्थ निकलेगा? जो कल्पना से भी अलग नहीं हो सकते, उनको तो पहले अलग कर दिया और फिर दोनों के बीच का झगड़ा मान्य किया! अब कहते हैं, उसको मिटाने के लिए 'सोशिआलिज्म' लाना चाहिए!

आज हरेक अपना-अपना ही हित देखता है। सारा चिंतन ही गलत ढंग का चल रहा है। जब तक हम अपने शब्द की शक्ति नहीं पहचानेंगे और पश्चिम से शब्द लेते जायेंगे, तब तक हमारा चिंतन ऐसा ही गलत ढंग से जारी रहेगा। हम अपने शब्दों में चिंतन करेंगे, तो सारी दुनिया से हमारा चिंतन भिन्न रहेगा। यह सारा साहित्यिकों को करना है। अंग्रेजी, चीनी, जपानी, फ्रेंच आदि अनेक भाषाओं में साहित्य है। यह ठीक है कि जो अच्छी चीज है, हमारे लायक है, वह वहाँ से लेनी चाहिए। पर ऐसी ही चीज हम लें कि जो हमारे शब्दों में पैठती है। अगर वह चीज हमारे शब्दों में ठीक पैठती है, तो वह कल्पना हमारे लिए ठीक है। अगर नहीं पैठती है, तो गलत है। आज बहुत से गलत शब्द हमारे चिंतन में पैठ गये हैं। परिणामस्वरूप गलत चिंतन होता है। इसलिए शब्द-शोधन का कार्य साहित्यिकों को करना चाहिए। ठीक शब्द लोगों के सामने रखने चाहिए, तब बहुत से झगड़े मिटेंगे।

एक भाई ने पूछा: "अनेक संत पुरुष हो गये। उन्होंने कई बातें कही हैं। परंतु बिना 'फोर्स' के क्या कोई काम हो सकता है?" सोचने की बात है कि इतने संत-महात्मा हो गये, इसीलिए हम आज जैसे हैं, वैसे बने हैं। अगर वे नहीं होते, तो हम जानवर बने रहते। हम कहाँ से कहाँ आ गये हैं! महाभारत का प्रसंग है। सवाल उपस्थित हुआ कि पत्नी पर पति का हक है या नहीं। सवाल कठिन मालूम हुआ। बड़े-बड़े ज्ञानी विद्वान वहाँ थे, परंतु "भीष्म, द्रोण, विदुर भये विस्मित"—कोई भी उसका जवाब नहीं दे सका। लेकिन आज का बच्चा-बच्चा इसका जवाब जानता है। विदुर याने क्या? पाणिनी का सूत्र है: "यथा विदुर भिदरौ।" भेद करने में अत्यंत प्रवीण, वे 'भिदुर' होते हैं। भिदुर याने तोड़ने-फोड़ने वाला। तोड़ने फोड़ने वाला तो वज्र होता है। वज्र को भिदुर कहते हैं। सूत्र में यही बताया है कि विद् और भिद् ये ही दो ऐसे धातु हैं, जिनको "उरु" प्रत्यय लगा कर विशेष अर्थ के शब्द बने हैं। "भिद्" धातु को "उरु" प्रत्यय लगा कर "भिदुर" बना, जिसका अर्थ होता है, भेदन करने में प्रवीण और "विद्" धातु को "उरु" प्रत्यय लगा कर "विदुर" बना है, जिसका अर्थ है, महाज्ञानी। ऐसा महाज्ञानी वहाँ बैठा है, फिर भी निर्णय नहीं हो सका! सवाल यही था कि चैतन्यमय प्राण को 'पन' में लगा सकते हैं कि नहीं? धर्मराज धर्मनिष्ठ, सत्यनिष्ठ राजा था। उसको द्यूत का निमंत्रण दिया गया, तो वह "नहीं" न कह सका। समझता था कि "नहीं" कहना धर्म के विरुद्ध है। आज तो कानून भी कहेगा कि द्यूत खेलना ग़ैरकानूनी है, अनैतिक है। लेकिन उस वक्त युधिष्ठिर "नहीं" न कह सके। डर था कि अधर्म होगा! कितनी छोटी-छोटी कल्पनाएँ थीं! परन्तु वहाँ से आप-हम यहाँ तक आये हैं तो यह सारा सत्पुरुषों का ही कार्य है।

आज दुनिया में सारे "वर्ल्ड पीस" के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन बनता कुछ नहीं! इसका मतलब यह नहीं कि संतों ने, महापुरुषों ने जो कार्य किया, उसका कुछ भी असर नहीं हुआ है। 'पीस' आज इसलिए नहीं है, क्योंकि उस शब्द में कुछ भी अर्थ नहीं है! वह शब्द ही अर्थशून्य है। जिसको हम शांति कहते हैं, वह 'पीस' नहीं है। वह 'पीस' तो 'वायलेन्ट' भी हो सकती है! किसी देश पर व्यापारी-बहिष्कार डाला जाता है। यह बिलकुल 'पीसफुल ऍक्शन' है। लेकिन इसमें भी हिंसा होती है। तो यह शांति नहीं है। शांति शब्द का 'पीस' के साथ कोई संबंध नहीं है। 'पीसफुल' याने प्रत्यक्ष लाठी नहीं चलायेंगे; बल्कि युक्ति-प्रयुक्ति से किया हुआ काम भी 'पीसफुल' माना जाता है! इसलिए 'पीस' 'विश्व-शांति' करने में निकम्मी है। पाश्चात्य शब्द के परिणामस्वरूप हमारे चिंतन में ये सारे विचार-दोष आते हैं। इसीलिए साहित्यिकों के सामने इतना ही कहना है कि आप शब्द-शुचित्व की तरफ ध्यान दें। शुद्ध शब्द का आविष्कार होगा, तो आचार-विचार शुद्ध होगा।

एक भाई ने हमको पूछा, "तुम दान क्यों मांगते हो?" यह सवाल ही क्यों पैदा होता है? दान का अर्थ मालूम नहीं, इस वास्ते यह सवाल पैदा होता है। शंकराचार्य ने दान का अर्थ बताया है, "दानं संविभाजनम्"। "दा" धातु का अर्थ ही "विभाजन" होता है। "दा" का अर्थ है—दो टुकड़े करना! विभाजन करना, यह मूल अर्थ है। अब ये सारी चीजें मालूम हों, तब तो शंका नहीं आयेगी। यह मालूम नहीं है, इस वास्ते 'दान' खराब मालूम होता है! दया खराब, करुणा खराब, वैराग्य खराब, संन्यास भी खराब, तो बताइये कि अच्छा क्या है? इस तरह अच्छे-से-अच्छे अर्थवाले शब्द ही खतम हो गये, तो आखिर बचेगा क्या?*

---

* केरल के साहित्यिकों के बीच (उत्तरार्ध), कोझीकोड़, ता० १२-७-५७।

www.vinoba.in

डॉ० श्री लोहियाजी की सेवा में !

(लक्ष्मीनारायण भारतीय)

आदरणीय श्री लोहियाजी ने ता० २४ जुलाई को काशी की एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए जो कहा, उसका सार यह है कि १. "भूदानवाले भूदान को सिर्फ एक कार्यक्रम भर मानें, 'अकेला' वही एक कार्यक्रम है, ऐसा न मानें। २. वे राजनीतिक प्रश्नों आदि में दखल न देकर भूदान का ही काम करें और ३. हमसे यदि वे सहयोग की अपेक्षा रखते हैं, तो हमारे कामों में भी, जैसे अखण्ड सत्याग्रह में, वे भाग लें। पार्टी के हित के लिए नहीं, चालीस करोड़ लोगों के हित के लिए यह काम चल रहा है," आदि।

हमें प्रसन्नता इस बात की है कि आदरणीय श्री लोहियाजी ने भूदान के साथ सहयोग की भावना प्रकट की है, असहयोग की नहीं; और कोई मतभेद, भूदान की सैद्धांतिक भूमिका या विचार-धारा के प्रति, प्रकट नहीं किया है। निस्संदेह उनका रुख स्वागत के योग्य है। ये दो-तीन बातें पूरी हो जायँ, तो वे पूरा सहयोग देंगे, ऐसा भी उन्होंने कहा है !

पर उन्होंने जो तीन बातें बतायी हैं, उनमें से आखिर की बात के सम्बन्ध में, यदि वे स्वयं गम्भीरतापूर्वक सोचें, तो उसकी व्यर्थता वे खुद समझे बिना नहीं रहेंगे, क्योंकि जहाँ एक ओर वे कहते हैं कि राजनीति आदि में भूदानवाले हस्तक्षेप न करें, दखल न दें, वहीं 'राजनीतिक-सत्याग्रह में भूदानवाले भाग लें', यह बात शायद भूल कर ही वे कह गये हैं ! फिर, यह जो अखण्ड-सत्याग्रह का याने कानून-भंग का आंदोलन है, उसके प्रति किसके क्या विचार हैं, इस पर भी शायद उन्होंने नहीं सोचा है। सत्याग्रह के तत्त्वज्ञान की चर्चा में हम यहाँ न जाकर इसी अंक में प्रकाशित अंग्रेजी 'भूदान' के सम्पादक श्री रावसाहब पटवर्धन के इस विषय के लेख की ओर हम उनका ध्यान खींचना चाहेंगे। लेकिन विचार-भिन्नता की बात थोड़ी देर के लिए अलग भी रख दें, तो भी सहयोग में सौदाबाजी कैसे आ जाती है, यह हमारी समझ में नहीं आया ! और फिर इसका परिणाम भी क्या होगा ? स्पष्ट है कि भूदान-आन्दोलन हर पार्टी से सहयोग चाहता है। तब तो हर पार्टी सौदे की ऐसी ही शर्तें पेश कर सकती हैं ! किसी एक पार्टी का ही कार्यक्रम चालीस करोड़ के हित का है, दूसरी का कतई नहीं और किसी एक के कार्यक्रम में ही हम भाग लें, दूसरे के कार्यक्रम में नहीं, यह फिर कैसे कहा जा सकेगा ? फिर तो कार्यक्रमों में भाग लेने की कोई मर्यादा ही नहीं बचेगी। किसीके दावे को भी कहाँ चुनौती देते बैठेंगे कि आपका कार्यक्रम देश के हित का है ही नहीं ! बिहार में आम चुनाव के समय कांग्रेस ने स्वयं श्री लक्ष्मी बाबू से ही चुनाव में प्रत्यक्ष मदद चाही थी। अगर 'शर्तबंदी' पर ही भूदान-आन्दोलन चलाया जाय, तो लक्ष्मी बाबू भी उन्हें कैसे इनकार कर सकते थे ? इसलिए कौन पार्टी अपने किस कार्यक्रम में कैसा प्रत्यक्ष सहयोग चाहेगी, इसकी कोई मर्यादा ही नहीं रहेगी। देश के सम्मुख आज अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याएँ हैं। सब प्रश्न अपने-अपने ढंग से उन्हें हल करने की राह लोग बता रहे हैं, कोशिश भी कर रहे हैं। हरेक की ईमानदारी पर शक करके किसीसे असहयोग करें और किसीसे सहयोग, यह कैसे सम्भव है ? और यदि प्रत्येक को सहयोग दें, तो फिर कहाँ-कहाँ कितनी-कितनी शक्ति भूदानवाले लगायें ? अगर यह कहा जाता कि आप इन समस्याओं पर अपनी राय दें या वैचारिक सहयोग करें, तो वह एक दूसरी बात हो जाती है। देश के बड़े प्रश्नों पर राय देना निस्संदेह आवश्यक है और जहाँ मतभेद नहीं है, वहाँ वैचारिक सहयोग भी सम्भव है। भूदान से ही लग कर ऐसा कोई कार्यक्रम चले, तो उसे भी करने के लिए विरोध नहीं है, वह होता भी है। या कोई पार्टी ही भूदान का काम अलग से उठाती है, तो उसको भी भूदानवालों ने सहयोग दिया है। मतलब यह कि विशिष्ट कामों में ऐसे सहयोग की भूमिका है, जहाँ कि विचार-भेद भी नहीं है। परंतु एक मर्यादा तो इस मामले में माननी ही होगी।

अब, भूदानवाले अन्य पार्टीवालों से भी सहयोग क्यों माँगें, यह उनका प्रश्न रह जाता है। इसका सीधा-सादा उत्तर यही है कि भूदान का (अब ग्रामदान का) काम दल या समूह-विशेष का नहीं है, सभी का है, सबके लिए है। दूसरे, समाजवाद को मानने वाली हर पार्टी इस भूमिका से सहमत है कि भूमि का निजी स्वामित्व मिट जाना चाहिए। तीसरे, उसके प्रचलित कार्यक्रम के बारे में विरोध नहीं है। प्रेम से एवं सर्वोदय-विचार समझा कर भूदान-ग्रामदान माँगने का कार्यक्रम सब अच्छा मानते हैं। चौथे, भूमि का प्रश्न आज बड़ा तीव्र (Burning) बन गया है और उसके हल पर आर्थिक विषमता का भी दूर होना निर्भर है। हर पार्टी ने भी भूमि के प्रश्न को अहम प्रश्न ही माना है, भले उसके हल का उसका अपना मार्ग भिन्न हो। पर यह बुनियादी सवाल है और शीघ्र हल होना चाहिए, इस पर किसीका मतभेद नहीं है। मुख्य चीज कानूनी मार्ग के बारे में है, सो कानून का मार्ग भूदान ने अवरुद्ध नहीं किया है, खुला ही किया है ! पाँचवें, जिस जनशक्ति को हम आज की दयनीय अवस्था के निराकरण के लिए संगठित करना चाहते हैं, उसके निर्माण की भी राह भूदान से खुल जाती है, क्योंकि जनशक्ति के आधार पर ही भूदान चल रहा है। छठे, आज की दूसरी समस्याओं को हल करने की भी राह इससे खुल सकती है, क्योंकि इससे जनशक्ति संगठित होती है, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर भी प्रभाव पड़ता है। सातवाँ कारण है—इसका जनता-जनार्दन पर छोड़ा जाना। तंत्रमुक्ति करके मामूली संगठन भी भूदान-आंदोलन ने भंग कर दिया है और अपने को जनता पर सौंप दिया है। भूदान-कार्यकर्ता अब विचार-प्रचारक और जनता के वाहक मात्र हैं और देश का ही आंदोलन देश पर छोड़ दिया गया है।

राजनीतिक गुलामी के हटने के बाद देश ने चाहा कि देश की गरीबी मिटे एवं आर्थिक-सामाजिक गुलामी हटे। इसके लिए भूदान द्वारा एक अमली कार्यक्रम मिला। प्रायोगिक तौर पर उसका एक सफल नमूना भी प्रस्तुत हुआ और सबका प्रेमपूर्वक आवाहन हुआ। सबने उसी प्रेम से सहयोग दिया एवं दे भी रहे हैं ! ऐसी हालत में सौदेबाजी या शर्तबंदी की चीज इस पवित्र सहयोग-भावना के मूल पर ही आघात करती है, ऐसा हमारा अत्यंत नम्र निवेदन आदरणीय श्री लोहियाजी की सेवा में है !

श्री लोहियाजी की शेष दो बातों के संबंध में हमें विशेष कुछ नहीं कहना है। कोई इसे 'एकमात्र' एवं 'अकेला' कार्यक्रम मानें या अन्य कार्यक्रमों में से यह भी 'एक' है ऐसा मानें, यह उनकी मर्जी पर निर्भर है ! देश की भूमि-समस्या यदि उग्र है, उसका हल भी उतना ही जरूरी है, यह कार्यक्रम कानूनी हल के मुकाबले सफल है, इससे समस्या के सुलझने में एवं वातावरण के बदलने में मदद मिलती है और ढाई हजार ग्रामों में से निजी स्वामित्व इस तरह मिटाने का सफल प्रयत्न कुछ महत्त्व रखता है, तो यह एकमात्र और अकेला कार्यक्रम हो सकता है, अन्यथा जैसी जिसकी विचार-धारा हो, उसके अनुसार अन्य कार्यक्रमों में से भी एक हो सकता है। यह बहस की चीज़ नहीं है। हाँ, भूदानवालों के लिए "एकहि साधे सब सधे" वाली चीज़ न हो, तो काम करना ही असंभव हो जाय !

श्री लोहियाजी की दूसरी बात है, राजनीति आदि में दखल न देने की एवं केवल भूदान-काम करने की। वे ज़रा गौर करें, तो देखेंगे कि भूदानवाले भूदान-ग्रामदान का ही काम कर रहे हैं ! कालड़ी के संमेलन ने भी ग्रामदान पर ही जोर लगाने को कहा है। आज भूदान का कार्यकर्ता ग्रामदान-संपत्तिदान या साधनदान के सिवा अन्य किसी राजनीतिक प्रवृत्ति में नहीं लगा है। जनता की बात अलग है। जब हम जन-जनार्दन का सहयोग चाहते हैं, तो वह अपना काम-धाम छोड़ कर या अन्य प्रवृत्तियाँ एक बारगी तज कर ही इसमें भाग ले, ऐसी शर्तबंदी नहीं की जा सकती ! लेकिन भूदानवाले आज भूदान का ही काम कर रहे हैं, इसके संबंध में हम डॉ. श्री लोहियाजी को आश्वस्त करना चाहते हैं, क्योंकि न तो हम कोई पार्टी बना रहे हैं, न पार्टियों की या सत्ता की राजनीति में भाग ले रहे हैं। पार्टियों के या देश के चुनाव में भी किसी दल के अनुगामी नहीं बने हैं। विचार-धारा की जहाँ तक बात है, यह सही है कि भूदान की विचारधारा सर्वोदय की अर्थात् गांधीजी की विचार-धारा है और सर्वोदय जीवन और जगत् के हर अंग को छूता है, अतएव हर प्रश्न पर वह अपनी एक विशेष दृष्टि भी रखता है। भूदान के द्वारा सर्वोदय-विचार का जो विकास हो रहा है, वह स्वभावतः आज की राजनीति, उसकी कार्य-प्रणाली, पक्ष-पद्धति, सत्याग्रह, आम चुनाव, संरक्षण, आर्थिक प्रश्न, समाज-पद्धति आदि को कुछ प्रभावित भी कर सकता है। परंतु ऐसे **विचार-विकास** और उसके प्रसार के लिए, हम मानते हैं कि, श्री लोहियाजी को, जो स्वयं एक गहरे विचारक हैं एवं गांधीजी को भी मानने वाले हैं, कोई विरोध हो नहीं सकता ! विचार-विकास तो हर आंदोलन की बुनियादी चीज होती है एवं आंदोलन का अवश्यंभावी परिणाम भी !

हम आशा करते हैं, आदरणीय श्री लोहिया जी जैसे विचारक एवं कर्मण्यशील नेता का सहयोग ग्रामदान-आंदोलन के लिए अवश्य प्राप्त होगा, क्योंकि जो समाजवाद उन्हें अपेक्षित है, उससे विपरीत कोई चीज इसमें नहीं है और अगर हममें अनेक दोष हैं, तो वे भी उनके सहयोग से दूर हो सकेंगे !

---

www.vinoba.in

एक हृदय हो भारत जननी !

(विनोबा)

सत्य, प्रेम, करुणा, ये तीन चीजें मानव के हृदय को खींचती हैं। सत्य, प्रेम, करुणा ही परमेश्वर का रूप माना गया है। सब धर्मों का सार भी यही है। शास्त्रों में लिखा है, "सत्यं ब्रह्म"–ब्रह्म सत्य-स्वरूप है। इस्लाम में कहा गया है, "रहमान रहीम"–परमेश्वर करुणामय है। क्राइस्ट ने बताया है, "गॉड इज़ लव"–ईश्वर प्रेमरूप है। तो, दुनिया में ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसको इन तीन चीज़ों के लिए आदर नहीं है। ये चीज़ें अपने में नहीं हैं, तो यह कमजोरी है, मजबूरी है। हृदय में सबके लिए आदर है, तो फिर भेद-भाव क्यों होते हैं ?

वास्तव में यह सब रुचि-भेद है। रुचि-भेद के कारण ही भेद दिखायी देते हैं। मानसिक मन-मुटाव होने का और कोई कारण नहीं दीखता। हम किसी प्रकार का भेद पहचानते नहीं। एक ही पेड़ की पत्तियाँ अलग-अलग दीखती हैं। विविधता सृष्टि का सौंदर्य है, वैचित्र्य है, आनंद है। अगर यह विविधता नहीं होती, तो मेरे सामने आप जो बैठे हैं, अलग-अलग चेहरेवाले, कोई चश्मा लगाता है, किसीको दाढ़ी है, किसी का रंग काला है, वगैरह जो विविधता है, उसके बदले में सब मेरे ही रूप दीखते ! तब मैं तो घबड़ा जाता और आपके सामने बोलने की भी हिम्मत नहीं होती, उसमें रुचि भी नहीं होगी। तो विविधता सृष्टि का आनंद है। एक ही चन्द्र कितने रूप लेता है ? इसलिए कवियों के लिए वह आनंद का रूप है। रोज़ का उसका नया-नया रूप होता है। फिर भी चन्द्र तो एक ही है। समुद्र को देखिये, निरंतर लहरें उठती हैं और गिरती हैं। उसके अगर फोटो लिये जायँ, तो एक क्षण का निकाला हुआ फोटो, दूसरे क्षण के फोटो से मिलेगा नहीं। दोनों में फरक होगा, लेकिन वह पानी ही पानी है। एकता के चैतन्य में जो लहरें उठती हैं, वह विविधता है। इस विविधता के कारण एकता मजबूत होती है, एकता रुचिकर बनती है। मनुष्य समुद्र को देख कर ऊबता नहीं। वैसे ही आकाश है। कितनी रमणीय चीज ! नित्य-नवीनता वहाँ जो रोज दीखती है, वही रस है। सामवेद में एक मंत्र है। इस सृष्टि के आनंद का अनुभव कर के ऋषि उसको प्रकट कर रहा है : "वसन्त इन्नु रंत्यो। ग्रीष्म इन्नु रंत्यो ॥ वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः। शिशिर इन्नु रंत्यः ॥ –वसंत रमणीय है, ग्रीष्म रमणीय है, वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर रमणीय हैं।" हरेक ऋतु की अपनी स्वतन्त्र रमणीयता है। जैसे-जैसे ऋतु बदलता है, वैसे-वैसे हमारी चर्या बदलनी चाहिए। यह आदत हमको होनी चाहिए। आनंद के प्रकार होते हैं। इसलिए आनंद का आनंद लेने में ही आनंद है। अगर आनंद नॉन-प्लस हो जाय, तो आनंद भी दुःखकर होगा।

इस वास्ते भारत का हमको वैभव मालूम होता है। कितनी भाषाएँ यहाँ हैं ? हरेक भाषा में कितना विविध प्रकार का साहित्य है ? देखते हैं, तो विशाल वैभव प्रकट होता है। जैसा कुदरत का वैभव है, वैसा ही सारस्वत का भी वैभव !

फिर हृदय का वैभव कम क्यों होना चाहिए ? विविध सृष्टि का हम दर्शन करते हैं। अगर यह विविधता न होती, तो इधर-उधर सारे अपना ही दर्शन करते। इसीलिए यह धर्म हमारा, यह जाति हमारी, ऐसा अगर कोई समझ बैठे, तो वह हमारी कमजोरी है। संगीत में सप्त स्वर होते हैं। क्या वे एक-दूसरे के विरोधी होते हैं ? हो सकता है, कोई संगीत न जानता हो ! तो विसंवादी स्वरों से भी संगीत होगा। परन्तु संगीतज्ञ सब स्वरों से मिश्रित सुन्दर राग बनायेगा। वैसे ही तमिल, मलयाली, गुजराती, मराठी सबको मिला कर एक भारत-राग बनना चाहिए। संगीत में जैसे अलग-अलग स्वर हैं, वैसे ही भारत की ये भाषाएँ हैं। सब स्वरों का मिल कर संगीत बनता है। अगर एक ही स्वर अपना बजता रहेगा, तो वह संगीत नहीं होगा, वह तो पक्षी की ध्वनि ही होगी।

भारत की विविधता से कितना आनन्द होता है ! उधर असम, इधर केरल और उधर काश्मीर ! यह भारत का त्रिकोण है, जहाँ तीन प्रकार के सौन्दर्य की खानें हैं। हिन्दुस्तान का सर्वोत्तम सौन्दर्य इन तीन कोनों में रहा है। असम में ब्रह्मपुत्रा नदी का वैभव है। यहाँ महान् समुद्र और पहाड़ों के बीच का प्रदेश–बैक वाटर–का सौन्दर्य है। काश्मीर में पहाड़ों का सौन्दर्य है। इस तरह की विविध सुंदरता तीन कोने में रखी है। अलग-अलग प्रदेशों के बीच भी कितनी विविधता है ? कच्छ की एक लड़की कुछ दिनों से हमारी यात्रा में है। वह कहती है, यहाँ जिधर देखो, वहाँ पेड़ ही पेड़ और जंगल ही जंगल दिखायी देता है, लेकिन कच्छ में यह कुछ दीखता नहीं। मारवाड़ में क्या होता है ? सूर्यनारायण उगता है, तो सुबह से शाम तक उसका दर्शन होता है। एक क्षण भी ऐसा नहीं कि जिसमें सूर्यनारायण का अदर्शन होता हो ! कितनी सुन्दर, तेजस्वी और प्रखर किरणें मिलती हैं ? वहाँ मनुष्य और जानवर के अलावा कोई भी जंतु जिंदा नहीं रह सकते। वहाँ पानी भी बहुत नीचे है। परन्तु वह भी सुन्दर, मधुर है। मलबार में कोई बीमार पड़ता है और अगर वह वहाँ चला जाता है, तो केवल हवा से ही सुधर जायगा। वहाँ ऊँट होते हैं। वह कभी जमीन की तरफ देखता नहीं। हर समय सिर ऊपर ही होता है। उसके पाँव होते हैं जमीन पर, परन्तु वह देखता है आसमान में। बिलकुल महापुरुष की ही मिसाल है ! खाता कम है, लेकिन चलेगा खूब। सब प्रकार की हवा सहन करता है। ऊंट मारवाड़ का वैभव है। जगह-जगह इसी प्रकार का अलग-अलग वैभव दिखायी देता है ! ऐसे देश में हम पैदा हुए हैं। इसलिए हमारा लक्ष्य व्यापक होना चाहिए। उतनी व्यापकता हममें आ जायगी, तो कुछ भी कम नहीं पड़ेगा।

(कोझीकोड़, केरल १३-७-'५७)

अखंड पदयात्रा के अंचल से–

(अनंत त्रिवेदी : सुशीला त्रिवेदी)

द्वारकापुरी भारत के उन पवित्र धर्म-स्थानों में से है, जहाँ 'सबै भूमि गोपाल की' कहने वाले भगवान् कृष्ण का पूजा-स्थान है। यहाँ से डाकोरजी करीब ३०० मील है। कहा जाता है कि एक भक्त बोडानजी ३०० मील पैदल चल कर श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए द्वारिका आते थे। जब वे ७४ साल के हुए, तो उनका आना असंभव हो गया। तब भगवान् ही भक्त के घर चले गये और तब से डाकोर परंधाम बना। ऐसे पवित्र स्थान पर हमने संकल्प किया कि 'सबै भूमि गोपाल की' के गायक श्रीकृष्ण की द्वारकापुरी से भारतमाता की पदयात्रा हम करें। द्वारका पहुँचे। न जाने भीतर से कौन शक्ति और उत्साह हमारे भीतर भर रहा था ! शंकराचार्य भी द्वारकापुरी आकर गये। इस पश्चिम किनारे से हम हिन्दुस्तान के पूरब किनारे (कलकत्ता) तक भूदान का संदेश प्रसारित करें, यह अदम्य लालसा हमारे मन में उठ खड़ी हुई और १६ जनवरी को हम लोगों ने यात्रा शुरू की। २६ जनवरी को बापू के जन्मस्थान पोरबंदर पहुँचे। २६ जनवरी हमको न सिर्फ बापू की याद दिला रही थी, बल्कि उस स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा की भी याद दिला रही थी, जो अपने वास्तविक रूप में अब ग्रामदान के द्वारा पूरी हो रही है। युवकों की एक विशाल सभा यहाँ हुई, जिसमें हमने बाबा का संदेश सुनाया और कहा, "बापू ने 'क्विट इंडिया' में जो 'स्वीट इंडिया' का संदेश गर्भित रख कर देश का आह्वान किया था, विनोबा अब वही संदेश प्रकट कर रहे हैं। बापू के समान विनोबा ने भी यह प्रतिज्ञा ली है कि ध्येय-प्राप्ति के बिना आश्रम नहीं लौटेंगे।"

घूमते-घूमते हम धार (मध्यभारत) पहुँचे। अजमेरा ग्राम में पड़ाव था। यह माँ रुक्मिणी का जन्मस्थान है। हरिजन-सेवक पुरुषोत्तम भाई हमें मींढ़ा ग्राम भी ले गये, जहाँ देहाती भाइयों को हमने ग्रामदान का विचार समझाया और लोगों की शंकाओं का निवारण किया। सभा के बीच प्यास लगी, तो हमने पानी माँगा। एक भाई से उत्तर मिला, "पहले भूदान ले लीजिये। पाँच बीघा दे चुका हूँ। इक्कीस बीघा, हल एवं एक मन अनाज और भी लिख लीजिये।" उनके इस संकल्प का परिणाम और लोगों पर भी हुआ और लोगों ने दानपत्र भरना प्रारंभ किया। पीछे से एक अधनंगे भाई चिल्ला उठे–"मेरी यह थोड़ी-सी (सवा बीघा) जमीन भी ले लीजिये और मेरे अपने हाथ के बने दो हल भी !" वह बढ़ई था, नरसिंह गणपति ! उसकी आँखों में जो तृप्ति और आनंद दीख रहा था, उसकी अभिव्यक्ति के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं ! एक-दो और आदिवासी भाइयों ने और चंद बहनों ने भी अपने दानपत्र लिखाये। पुण्यदान की वर्षा हो रही थी। उसके बाद गाँववालों ने अत्यंत प्रेमपूर्वक हमारा आतिथ्य करके हमें विदा किया।

आगे भी जगह-जगह आदिवासी भाइयों से अनाज-दान, भूदान आदि मिलता रहा। अजमेरा में भी यही दान-वर्षा होती रही। ५१ बीघा गरीब दाताओं से मिले। श्री विजयराम भाई द्वारा आश्वासन मिला कि भूदान का काम अब वे करेंगे। धार में कार्यक्रम चल रहा था। श्री लक्ष्मणसिंहजी साथ में थे। वहाँ विजयराम भाई दौड़े आये और कहा : "छठा हिस्सा (६६ बीघा) दान ले लीजिये।" आखिर उनको भी प्रेरणा हुई। हमने उनसे दान माँगा भी नहीं था। लेकिन जब भूदान का काम उन्होंने हरिजन-सेवा के साथ ही उठा लिया, तो अपना हविर्भाग वे कैसे नहीं देते ? हम वहाँ से श्रद्धा लेकर लौटे कि ग्रामदान भगवान् की देन के रूप में ही प्रगट हुआ है, जो सफल होकर रहेगा।

---

www.vinoba.in

तिरुमंगलम् तालुका के स्फूर्तिदायी अनुभव

(ठाकुरदास बंग)

मदुराई जिले के तिरुमंगलम् तालुका में सवा सौ से ज्यादा ग्राम ग्रामदान में मिले हैं। मदुराई के इन ग्रामदानी गाँवों को देखने और ग्रामवासियों से मिलने की दृष्टि से हम लोग—मैं, मेरी पत्नी, उड़ीसा के भूदान-कार्यकर्ता श्री मनमोहन चौधरी और महाकोशल के श्री गंगाधरराव पाटणकर—दो दिन वहाँ गये थे और छह ग्रामदानी गाँव हमने देखे। हमारे साथ वहाँ के भूदान-सेवक श्री जगन्नाथन्‌जी, गांधी-निकेतन के श्री गुरुस्वामी नादार और मदुराई के निवेदक श्री वरदन् भी थे।

छह गाँवों में हमने ग्रामीणों से मिल कर प्रश्न पूछ कर जानकारी प्राप्त की। निष्कर्ष यही निकला कि **ये ग्रामदानी गाँव भारत के लिए भूषणास्पद हैं। ग्रामीणों ने समझ-बूझ कर ही अपनी सारी जमीन ग्रामदान में दी है। छह में से पाँच गाँवों के ग्रामीणों ने, ग्रामदान के बाद तीन माह होने पर भी, निर्माण-कार्य अभी शुरू नहीं हुआ, इसका कोई जिक्र भी नहीं किया।** एक गाँव ने इसके लिए जिज्ञासा प्रकट की, लेकिन अधिक जोर नहीं लगाया। श्री पाटणकरजी ने जगह-जगह भाषणों द्वारा बताया कि विदर्भ के प्रथम ग्रामदानी गाँव 'वाई' में कैसे निर्माण-कार्य शुरू हुआ। आगे के निर्माण-कार्य की जिम्मेदारी भूदान-कार्यकर्ताओं की ही नहीं, वह सबकी है और उसमें ग्रामवासियों का अधिक हिस्सा है, ये बातें छहों गाँवों के ग्रामवासी महसूस करते हैं, ऐसा नजर आया। सड़क पर बसे हुए पाँच हजार आबादी वाले 'सापटूर' गाँव में भी हम गये। **यहाँ के कम्युनिस्ट नेता ने यह गाँव ग्रामदान में प्राप्त करा देने में काफी सहायता की। उन्होंने अपनी सारी जमीन भी दान में दे दी थी।** सड़क से बहुत दूर बसे एक बड़े गाँव में हम गये, तो कुछ छोटे गाँव भी देखे। सर्वत्र एक ही दर्शन हुआ। लोग ग्रामदान देकर खुश हैं। साहूकारों ने अपना कर्ज वापस करने के लिए अधिक तंग नहीं किया, ऐसा भी नजर आया। कोऑपरेटिव सोसाइटीज़ भी उन्हें पूर्ववत् कर्ज देने के लिए तैयार हैं। वहाँ के सरकारी अधिकारियों और गांधी-निकेतन के आश्रमवासियों का पूरा सहयोग है। सभी विकास-अधिकारी खादी पहनते हैं। उनके तालुके में ग्रामदान हुआ है, इसकी उन्हें बेहद खुशी है। ग्रामदान होते ही श्री जगन्नाथन्‌जी ने तुरन्त सब साहूकारों को पत्र लिखा था कि "वे कर्ज के लिए चिन्ता न करें, गाँव सब कर्ज वापस करेगा।" कर्ज के कारण कोर्ट द्वारा जमीनें जब्त होकर उनकी बिक्री न हो, इसके लिए सरकार कानून बना देने को सोच रही है। ग्रामदानी गाँवों के निर्माण के लिए बहुत बड़ी रकम देकर उनके विकास के लिए योजना बनाने का विभाग भी मुख्य मंत्री ने खुद अपने जिम्मे रखा है। अतः जनता, भूदान-कार्यकर्ता, रचनात्मक-कार्यकर्ता और सरकार के सहयोग से किस तरह अच्छा काम हो सकता है, इसका यह सुन्दर नमूना है।

यहाँ केवल तीन महीनों में इतने ग्रामदान हुए। गांधी-निकेतन गत पंद्रह साल से लोगों में ग्रामराज्य की भावना पहुँचाने की जो साधना कर रहा है, उसीका यह सुफल है। खादी-ग्रामोद्योग, नयी तालीम, प्रशिक्षण आदि के जरिये आश्रम ने जनता की सेवा की। श्री और श्रीमती वरदन् ने १९५५ में ही इस तालुका के हर एक गाँव में दो-दो बार पहुँच कर भूदान-विचार समझा दिया था। दिसम्बर '५५ में आश्रम-वासियों के साथ ग्रामदानार्थ सामूहिक पदयात्राएँ भी निकाली गयी थीं। उस समय १५-२० गाँव ग्रामदान में मिले। बाद में विनोबाजी जब पहुँचे, तो ग्रामदान की वृष्टि ही हुई। तालुका के सबके सब, सात सौ गाँवों के लोगों ने संकल्प किया है कि हम पूरा तालुका ही ग्रामदान में प्राप्त करेंगे, पर इलेक्शन के कारण बीच में रुकावटें आ गयीं। फिर भी सतत काम चल रहा है! ('साम्ययोग' से)

प्रश्न : आप जैसा सर्वोदय-ग्राम बनाना चाहते हैं, वैसा एक गाँव केरल में आप बना कर दिखायेंगे, तो उससे अन्य प्रांतों की जनता को आंदोलन के बारे में विश्वास होगा।

विनोबा : अपने पाँव को चोट लगी, तो शरीर के दूसरे अंग में उसकी वेदना पहुँचती है। आँखों से आँसू आते हैं, चिल्लाते हैं, हाथ से ऍक्टिंग भी होती है। यह जिंदे शरीर का लक्षण है। अगर यह संवेदना न पहुँचे, तो माना जायगा कि वह अवयव मर गया! भारत को अभी जिंदा शरीर बनाना है। यद्यपि अखबारों से प्रचार हो सकता है, फिर भी इधर की संवेदना उधर पहुँचती नहीं! कोरापुट में २००-२५० गाँवों में सर्वोदय का काम चल रहा है! पर इसकी जानकारी ही यहाँ के लोगों को नहीं है। तो, केवल एकाध जगह काम करने से ही नहीं होगा, सब प्रांतों में कुछ-न-कुछ काम होना चाहिए और साथ-साथ वातावरण भी पैदा करें।

'कुन्दुरु' की श्रमसिक्त कहानी !

(गोविंद रेड्डी)

कुन्दुरु एक उत्तम जाति की तरकारी है और बारहों महीने फलती है। कच्ची भी खायी जा सकती है। कभी भी लगायी जा सकती है। एक दफा लगाने के बाद तीन चार साल तक रहती है। जमीन को हर साल कटिंग लगा कर यह करना चाहिए। पहले साल बीज लगाने के पहले २'×२'×२' का गड्ढा बना कर कचरा-रहित खाद भरें। तब बीज का डंठल गोल बना कर दोनों ओर जमीन में दाबें। सिर्फ आधा इंच जमीन के ऊपर दिखायी दे। अंकुर निकलने के बाद स्वस्थ अंकुर रख कर बाकी सब निकाल दिये जायँ। हर १५ दिन में गुड़ाई करते रहना चाहिए। गुड़ाई करते समय बाल जैसी बारीक जड़ें निकालना अत्यन्त आवश्यक है। कभी-कभी एक-एक हफ्ते तक पानी बिलकुल न दिया जाय। हमेशा सूखी पत्तियाँ निकालते जायँ। वेल को फैलने का खूब मौका देना चाहिए। परंतु यह सब काम ज़ाती तौर पर खुद के श्रम से होना चाहिए, मजदूरों के भरोसे नहीं। इस संबंध में मेरा एक उदाहरण मनोरंजक साबित होगा।

सन् १९५१ में ३०० कुन्दुरु के पेड़ लगाये थे। ३०० पेड़ों की सार-संभाल मजदूरों के ऊपर थी। ३०० पेड़ों की व्यवस्था करने में किसी प्रकार की कमी नहीं रखी। उसके लिए लोहे के तार के मंडप भी बनवाये थे, तो भी सफलता नहीं मिली। '५२ में फिर १६ कुन्दुरु के पेड़ लगाये। उसमें भी हार खानी पड़ी, क्योंकि मजूरों से कितनी सार-संभाल हो सकती है? गणित के आँकड़े मेरे हृदय में बैठ गये थे। विचार छोड़ा नहीं था, फिर सफलता मिली, क्योंकि अब स्वश्रम पर निर्भर था। ता० ७-६-५६ को कुन्दुरु की बोवाई। २७-६-५६ को अंकुर निकलना। ३०-६-५६ तक ६ इंच ऊँचाई। १-७-५६ से रोज ६ इंच ऊँचाई बढ़ती गयी। १५-७-५६ तक एक ही टहनी रखी, तब तक पौधा ६ फुट ऊँचा हो चुका था। २७-७-५६ को पहला फूल निकला। १-८-५६ को कुन्दुरु का फल तोड़ना प्रारम्भ हुआ। अगस्त में ४४०, सितम्बर में ६५० और अक्तूबर में ५५० कुन्दुरु प्राप्त हुए। (एक सेर में ७२ कुन्दुरु आते हैं।)

बाकी महीनों का हिसाब बाहर घूमने के कारण नहीं रख सका। ६ महीनों में कुन्दुरु का डंठल ५ इंच व्यास का बन गया। इसके लिए पाखाने का खाद, राख और रात में सोने के पहले का और उठने के बाद का पेशाब अक्सर दिया जाता था। पेड़ को लगाते समय एक घंटा और बाद में मंडप डालने में ८ घंटा समय दिया।

क्रांतियात्रा के एक पथिक !

सन् '५७ की क्रांति के लिए निकले एक सत्याग्रही लोकसेवक, श्री महेंद्र सिंहजी गाँव-गाँव घूम रहे थे कि उनके पिता को लकवा मार जाने की खबर मिली। बिहार में १८ अप्रैल को भूमि-वितरण के माध्यम से सन् सत्तावन की क्रांति की तैयारी के लिए प्रत्येक सबडिविजन के शिविर के आयोजन में एक सबडिविजन के शिविर के संयोजन की जिम्मेदारी इन पर भी थी। इसलिए वे घूमते हुए एक गाँव में हमसे भी मिले। शिविर के संयोजन की वार्ता के बाद पिताजी की बीमारी की भी चर्चा चली। हमने उन्हें पिताजी को एक बार देख आने की सलाह दी, पर वे लौटे नहीं। पिताजी के कष्ट से बढ़कर उन्हें जन-पिता का दर्द अधिक कष्टकर लगा! सवेरे उन्होंने रात में पिताजी की मृत्यु का स्वप्न देखा, सुनाया और आगे बढ़ गये। स्वप्न, स्वप्न ही है, मान कर हमने टाल दिया। लेकिन अगले दिन खबर मिली कि सच में उनके पिताजी परंधाम को सिधार गये! उनके भाई, संबंधी उन्हें लिवा लेने आये, पर वे लौटे नहीं। श्राद्ध के आयोजन के लिए उन्होंने साफ कह दिया, "मैं शिविर-आयोजन और संयोजन को ही स्व०पिताजी की श्राद्ध-क्रिया की श्रद्धा मान कर चल रहा हूँ।"

शिविर का दूसरा दिन उसके पिता का श्राद्धदिन था। शिविर की व्यवस्था में वे इसका स्मरण भी भूले थे। हमने शिविर में ही स्व० पिता को जलांजलि दिलवायी। एक सत्याग्रही लोकसेवक की यह दृढ़ निष्ठा महान् संकल्प की ओर विशिष्ट निष्ठा के लिए अनुप्रेरित करती है।

—गोपालकृष्ण मल्लिक

---

www.vinoba.in

केरल-यात्रा से—

(गोविंदन्)

केरल का प्रकृति-सौंदर्य बहुत ही मनोरम है। यहाँ साल भर में १००" से ज्यादा बारिश होती है। छह महीने बारिश, छह महीने धूप। शीतकाल तो यहाँ नहीं के बराबर होता है। इसलिए यहाँ के लोग बिछौना ज्यादातर नहीं रखते। धूपकाल में भी केरल में अब तक हरियाली का ही दर्शन होता है। यहाँ के गाँव अक्सर ऊँचे टीले पर होते हैं। हरेक घर अलग-अलग। विनोबाजी अक्सर कहा करते हैं कि कहीं भी अंधे को गाँव के नजदीक आने पर नाक की सहायता से गाँव का पता चल जाता है! पर केरल के गाँवों में अंधे को यह पता लगना मुश्किल है। हर घर के चारों तरफ बगीचा रहता है, जिसमें नारियल, केले, काजू, आम, कटहल, इमली आदि के पेड़ रहते हैं। गाँव की चारों तरफ कुछ खेत और उसकी चारों तरफ छोटे-छोटे पहाड़ होते हैं। जब बादल छा जाते हैं, तो पहाड़ नीला और काला रंग धारण करते हैं। बीच-बीच में बिजली की चमक होती है। मानो इन्द्रदेव नामक फोटोग्राफर बीच-बीच में फ्लैश-लाइट लगा कर केरल की प्रकृति का फोटो खींच रहे हों। यात्रा के समय अगर जोरदार बारिश होती है, तो विनोबाजी "सा...रे...ग" बहुत ही जोर से गाने लगते हैं और कहते हैं: "उससे कंठ साफ होता है। शिशिर रमणीय है, हेमन्त और वर्षा भी रमणीय है, इस तरह का मंत्र वेद में आता है।" बारिश में मेंढक की ध्वनि सुन कर विनोबाजी ने कहा, "मेंढक दो तरह के होते हैं: एक मिट्टी के रंग का और दूसरा पीले रंग का। वैसे ही उनकी आवाज भी दो तरह की होती है। एक बकरी की-सी आवाज, दूसरी बैल की-सी आवाज! मेंढक बारिश आने के लिए ठंढक और धूप में तप करता है। धूप में मेंढक कितना दुबला-पतला और कृश रहता है! लेकिन बारिश पड़ते ही वह एकदम फूल जाता है। मेंढक के तप के कारण बारिश होती है!"

परली नामक गाँव में पड़ाव था। आते समय मूसलाधार बारिश हो रही थी। सामने नीले पहाड़ से बादल उठ रहे थे। हम सभी को बड़ा उत्साह महसूस हो रहा था। विनोबा केरल का देहाती छाता पकड़े जोर से गाने लगे। रास्ते में कीचड़, काँटे, पत्थर, कंकड़ पड़े थे। लेकिन किसीको भी उसका भान नहीं हुआ! परली बड़ा ही रमणीय स्थान है। दो छोटी नदियों का वहाँ संगम है। नदी के किनारे पर बसे स्कूल में विनोबाजी का पड़ाव था। वहाँ कार्यकर्ताओं की भी सभा हुई, जिसमें करीब ८० कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।

परली से जाते समय श्री बाबूराव कामत से विनोबाजी की बातचीत हो रही थी। कामतजी ने पदयात्रा में साइकिल की आवश्यकता बाबा के सामने रखी। बाबा ने तुरन्त कहा, "मैं तो साइकिल की अपेक्षा गधे को ज्यादा पसन्द करूँगा! नाला आया, तो साइकिल बेकार! कीचड़ में साइकिल किस काम की? गधा तो नाला और कीचड़ में भी चलेगा! हाँ, उसको ब्राह्मण के जैसा पवित्र रखना चाहिए और खूब खिलाना चाहिए। 'गीता-प्रवचन' जैसे अच्छे-अच्छे ग्रंथ पीठ पर ढोते-ढोते अगले जन्म में वह वैदिक ब्राह्मण के घर में पैदा होगा! दर-असल उसको देख कर तो हमें दया ही आती है।"

—

श्री बाबा राघवदासजी की पदयात्रा का कार्यक्रम

अगस्त ता०	मुकाम नाश्ता	मील	मुकाम रात्रि	मील
२	दिवटिया	४	देलावाड़ी	५
३	नीबू झिरिया	२	सेमरी	५
४	बोरदी	३	रहटी	२
५	रमगढ़ा	३	नंदगाँव	३
६	राला	२	नसरुल्लागंज	३
७	रिछाडिया	५	इटारसी	५
८	धोलपुर	४	छीपानेर	५
९	कोलारी	३	सिंदलपुर	५

पदयात्रा का कार्यक्रम साधारणतया इस प्रकार रहेगा: प्रातः ४ बजे उठना, ५ बजे प्रार्थना, ५॥ बजे पदयात्रा आरम्भ, ७ से ८ के बीच मार्ग में नाश्ता, १० बजे पहुँचना, १२ से ३ तक भोजन, विश्राम तथा सूत्रयज्ञ (२॥ से ३ तक) ३ से ४ तक आम सभा, भोजन शाम को ६ बजे, रात्रि में ७॥ से ९ तक ग्रामीणों से ग्रामदान के बारे में चर्चा। पत्रव्यवहार का पता—मार्फत / श्री गांधी आश्रम खादी-भंडार ४, रॉयल मार्केट, भोपाल (मध्यप्रदेश)।

गया जिला फिर क्रान्ति-पथ पर!

गया जिले में भू-दान का कार्य व्यापक पैमाने पर शुरू हुआ है। गाँव-गाँव में विचार-प्रचार, भू-दान-प्राप्ति, भू-वितरण के कार्य होते रहे हैं। अब ग्रामदान का कार्य करना है। उसके लिए फिर से गया जिले में सघन काम करने का तय हुआ है। ता० १० जुलाई को समन्वयाश्रम, बोधगया में जिले भर के कार्यकर्ता ३ रोज रहे। श्री जयप्रकाश बाबू अस्वस्थता के कारण उपस्थित नहीं रह सके। श्री कामता प्रसाद सिंह के सभापतित्व में चर्चा हुई। कार्यक्रम बना कि ३ सघन-क्षेत्र बना कर ग्रामदान का कार्य किया जाय। बाकी क्षेत्रों में व्यापक प्रचार, ग्राम-संकल्प का कार्य किया जाय, यह तय हुआ।

गया जिले के कार्य का आरंभ गया नगर से किया जाय, ऐसा तय हुआ है। गया नगर में सघन पद-यात्रा ता० १९ अगस्त से २७ अगस्त तक की जायगी। इस संबंध में दो बार गया नगर के प्रमुख कार्यकर्ताओं ने श्री जयप्रकाश बाबू की उपस्थिति में चर्चा की। गया नगर को आठ हिस्सों में बाँटा गया है। हरएक घर, हर-एक दूकान पर पहुँचा जाय और सर्वोदय-विचार समझाया जाय, ऐसा प्रयत्न किया जायगा। नगर में आठ आम सभाएँ होंगी। हर रोज एक विचार-शिविर होगा, जिसमें नगर के विचारकों के बीच श्री जयप्रकाश बाबू बोलेंगे। गया जिले भर के विद्यार्थियों का एक संमेलन और आठ दिन का शिविर भी होगा। इसके अलावा नगर के व्यापारियों, मजदूरों, वकीलों, डॉक्टरों आदि की अलग-अलग सभाएँ होंगी। ६ अगस्त को गया जिले भर के काँग्रेस तथा प्रजा-समाजवादी कार्यकर्ताओं की दो सभाएँ होंगी।

यह समूचा कार्य श्री जयप्रकाशजी के मार्गदर्शन में हो रहा है। इसमें स्थानिक तथा बाहर के सज्जनों की सहायता की जरूरत है। जो सज्जन सहायता करना चाहें, वे निम्नलिखित पते पर व्यवहार करें।

बिहार खादी-ग्रामउद्योग-संघ, गया (बिहार) —द्वारकी सुन्दरानी

—

—कोलीकोड़ शहर के व्यापारियों की सभा में ता. ११ जुलाई को ११८८०) वार्षिक के ३२ संपत्तिदान-पत्र प्राप्त हुए।

—मैं अब पंचमहाल (गुजरात) में आयी हूँ। यहाँ हम दो बहनों की ग्रामदान-पदयात्रा होने वाली है। अभी आदिवासियों में घूमी। जो कभी देखा नहीं था, वह देखा। सुना नहीं था, सो सुना। जिन्दगी में ऐसी गरीबी के दर्शन का यह पहला मौका था। दिल ने बहुत कुछ अनुभूति की। ग्रामदान की हवा फैल रही है। साबरकांठा के कार्यकर्ता दिवाली तक ८० ग्रामदान और उसके बाद तालुकादान-प्राप्ति का प्रयत्न करेंगे। **—मीरा व्यास**

—श्री विनोबाजी का और श्री वल्लभस्वामी का डाक-तार का पता: मार्फत: श्री श्यामजी सुंदरदास, कोलीकोड़ (केरल) KOZHIIKODE-1.(KERAL)

विषय-सूची

१. चक्रव्यूह के अभिमन्यु का आवाहन!	विनोबा	१
२. प्रश्नोत्तरी	,,	२
३. समाजवाद ग्रामदान के द्वारा ही संभव है!	जयप्रकाश नारायण	३
४. सविनय कानून-भंग के लिए नीति-मर्यादाएँ	रावसाहब पटवर्धन	४
५. महाराष्ट्र की चिट्ठी	——	५
६. विश्वशांति की शक्ति कैसे प्रकट होगी?	विनोबा	६
७. विदेश के मित्रों द्वारा	डेविड् हॉगेट : डोनाल्ड ग्रूम	६
८. शब्द-सृष्टि के ईश्वरों का महान् दायित्व!	विनोबा	७
९. शब्द-शुचित्व और शब्द-महिमा!	,,	८
१०. डॉ. श्री लोहियाजी की सेवा में!	लक्ष्मीनारायण भारतीय	९
११. एक हृदय हो भारत जननी!	विनोबा	१०
१२. अखंड पदयात्रा के अंचल से—	अनंत त्रिवेदी : सुशीला त्रिवेदी	११
१३. तिरुमंगलम् तालुका के स्फूर्तिदायी अनुभव	ठाकुरदास बंग	११
१४. 'कुन्दुरु' की श्रमसिक्त कहानी!	गोविंद रेड्डी	११
१५. केरल-यात्रा से—	गोविंदन्	१२
१६. गया-जिला फिर क्रांति-पथ पर!	द्वारको सुन्दरानी	१२
१७. आंदोलन-समाचार आदि	——	१२

सिद्धराज ढड्ढा, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव-भूषण-प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता: राजघाट, काशी; टे० नं० १२८५।

www.vinoba.in